

४

राजनीतिक
उठापटक

फिर पानीपत का मैदान

पानीपत के मैदान ने न जाने कितनी बार भारत के भाग्य का निर्णय किया है। उसने कितनों का पानी निचोड़ लिया और पद गिरा दिया इसको इतिहास के विद्यार्थी अच्छी तरह जानते हैं। पर किसी एक का पद गिरने का मतलब है कि दूसरे का पद चढ़ना। एक की सत्ता जाती है, दूसरे की सत्ता आती है और युं रथ के पहिए की तरह से काल-चक्र अपना खेल खेलता रहता है।

बिना महाभारत के एक महाभारत हो गया। हरियाणा विधान-सभा के चुनावों को लेकर कुरुक्षेत्र (हरियाणा) के मैदान में दोनों तरफ जो अक्षोहिणी सेनाएं जमा हुई थीं, उनमें से हारने वाली मुंह लटकाये बैरकों में वापस चली गई और जीतने वाली आंखों में और वाणी में हर्षोल्लास के स्वर लिए हरियाणा की भाग्य-विधाता बनने की तैयारी में है। इस चुनाव में जीतने वालों की यदि जीत अभूतपूर्व हुई, तो हारने वालों की हार भी अभूतपूर्व हुई। यह देखकर बहुतों को आश्चर्य हो सकता है, परन्तु इतिहास में ऐसे उलट-फेर होते रहते हैं।

सारे देश में इस समय जो हवा चल रही है उसको देखते हुए हरियाणा के चुनाव को भविष्य का संकेत समझा जा सकता है। पंजाब, असम, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र, केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु में कांग्रेस की सत्ता पहले ही खिसक चुकी थी। इसलिए कांग्रेस का सारा दारोमदार हिन्दी-भाषी राज्यों पर था। यों भौगोलिक दृष्टि से हिन्दी-भाषी राज्यों का कम महत्त्व नहीं है। गत पांच हजार वर्षों से केन्द्र हमेशा भारत के इन्हीं मध्यवर्ती प्रदेशों के पास रहा है। देश की आज़ादी या गुलामी में भी सब से बड़ा हाथ यदि किसी का रहा है तो इन हिन्दी-भाषी प्रदेशों का ही रहा है। अब भी यह निश्चय है कि भारत के हृदय के स्थान पर विराजमान इन हिन्दी-भाषी प्रदेशों की जो विचार-दिशा होगी, सारा देश उसी का अनुगमन करेगा। सीमावर्ती राज्य अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण हमेशा कुछ न कुछ डांवाडोल स्थिति में रहते ही हैं। इसलिए किसी भी केन्द्रीय सत्ता का वर्चस्व अपने उन्हीं मध्यवर्ती प्रदेशों के ऊपर होता है, जो केन्द्र के चारों ओर घिरे होते हैं। भारत में हिन्दी-भाषी प्रदेशों की यही स्थिति है। इसलिए केन्द्र के बनने या बिगड़ने में इन प्रदेशों की महत्ता को कम नहीं किया जा सकता।

कांग्रेस भी इस बात को अच्छी तरह समझती थी। इसलिए गैर हिन्दी-भाषी प्रदेशों के गैर-कांग्रेसवाद के वशीभूत हो जाने पर भी वह मन ही मन आश्वस्त थी कि कम से कम अभी तक हिन्दी-भाषी प्रदेशों पर उसका नियन्त्रण कायम है। परन्तु हरियाणा के इन चुनाव-परिणामों ने कांग्रेस के उसी अमेघ दुर्ग में सेंध लगा दी है। इसीलिए इसने जहां हरेक कांग्रेसी को अन्दर और बाहर से आंदोलित किया है, वहां प्रत्येक देशवासी को भी। हो सकता है कि धीरे-धीरे जिस अराजकता की ओर विघटनकारी शक्तियां देश को ले जाने की कोशिश कर रही हैं, उस अराजकता में भी इसके कारण कुछ वृद्धि हो। परन्तु देश के भविष्य में जिनको पूरी आस्था है, वे इस प्रकार सोचना नहीं चाहेंगे। वे तो यही कहेंगे कि ऐसी उथल-पुथल तो होती ही रहती है। परन्तु यदि हरियाणा की हवा अन्य हिन्दी-भाषी राज्यों में भी चल पड़ी, जिसकी पूरी आशंका है, तो उन राज्यों की सरकारें भी आंधी में उड़े बिना नहीं रहेंगी।

हरियाणा में देवीलाल की विजय को इस रूप में नहीं देखना चाहिए कि देवी लाल ने कर्ज मुआफ करने या पानी देने और अबोहर-फ़ाज़िलका को दिलवाने के मोहक नारे देकर हरियाणा की जनता को लुभा लिया। यह ठीक है कि चुनाव प्रायः भावनात्मक और मोहक नारों पर ही जीते जाते हैं, परन्तु इस बार बात कुछ अधिक गंभीर लगती है। उसका कारण है कि पूरे देश में जो ऐतिहासिक शक्तियां काम कर रही हैं, उसी का असर हरियाणा पर भी पड़ा है और मानो हरियाणा अपनी अलग पहचान बनाने की खातिर जैसे सोते-सोते उठ खड़ा हुआ है। यह जीत देवीलाल की नहीं है, यह हरियाणा की आन की जीत है। देवीलाल ने अपने आपको हरियाणा की आन का प्रतीक ही बना लिया था, जिसका लाभ उन्हें मिला। इसलिए इस जीत में व्यक्तिगत करिश्मे की बात सोचना गलत होगा। व्यक्तिगत करिश्मा भी जनता पर हावी होता है, परन्तु जब करिश्मे का मुलम्मा उतर जाता है तो शिखर पर बैठे व्यक्ति भी धराशायी होते दिखाई देते हैं। अन्यथा जिस बंसी लाल को सही अर्थों में हरियाणा का निर्माता कहा जा सकता है और जिसको कांग्रेस ने बड़ी आशाओं से केन्द्रीय मंत्री पद से हटाकर हरियाणा का मुख्यमंत्री बनाया था, उसकी यह दुर्गति न होती।

हरियाणा के साथ हमेशा अन्याय होता रहा। जब तक वह पंजाब में शामिल रहा, तब तक वह हमेशा पंजाब का सब से पिछड़ा प्रदेश बना रहा। इतिहास की पृष्ठभूमि में जाएं तो उसका कारण भी यह था कि सन् १८५७ की राज्य-क्रांति में हरियाणा के लोगों ने, चाहे वे हिन्दू थे या मुसलमान, अंग्रेजों के विरुद्ध डटकर लोहा लिया था। अंग्रेजों ने उसी का दंड देने के लिए और सिख-रियासतों को पुरस्कृत करने के लिए, क्योंकि उस समय उन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया था,

हरियाणा को जान-बूझकर अभावग्रस्त रखा, और पंजाब को अपने वरदानों से सींचा। हरियाणा के पंजाब से अलग होने में यह भी एक बहुत बड़ा कारण था कि पंजाब में रहते हुए इस प्रदेश की हमेशा उपेक्षा होती रही। इसलिए हरियाणा अलग होकर अपने पांव पर खड़ा होना चाहता था और सिख पंजाबी सूबे के बजाय एक सिख-बहुल प्रदेश चाहते थे। पंजाब के विभाजन के पश्चात् हरियाणा जिस तरह प्रगति की ओर बढ़ता हुआ अनाज की पैदावार में पंजाब के मुकाबले के लिए खड़ा हो गया यह उसके आत्म-विश्वास का परिचायक था। परन्तु केन्द्रीय सत्ता ने पंजाब-समझौता करते हुए हरियाणा को जिस तरह नज़रअंदाज कर दिया, शाह आयोग के निर्णय के अनुसार चण्डीगढ़ हरियाणा को नहीं दिया, उसके बाद चण्डीगढ़ पंजाब को देने के बदले अबोहर फ़ाजिलका हरियाणा को देने की जो बात थी वह भी पूरी नहीं की, फिर सतलुज-यमुना लिंक नहर के बनने में जो अड़ंगा लगाया जाता रहा, उसके कारण समस्त हरियाणा वासियों में एक अपमानबोध की भावना थी, जिसका प्रतिशोध जनता लेना चाहती थी। चौधरी देवी लाल ने जनता के मन में उसी अपमानबोध की भावना को और भड़का दिया, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस को इस भयंकर पराजय का मुंह देखना पड़ा।

हरियाणा की जनता में न देशभक्ति की कमी है और न ही वहां के निवासी अन्य प्रदेशों की तरह प्रादेशिकता की भावना से ग्रसित हैं। राष्ट्र-रक्षा के लिए सैनिक प्रदान करने में भी हरियाणा का कम योगदान नहीं है, परन्तु शिक्षा, उद्योग, पेयजल, बिजली, सड़कें और सिंचाई की व्यवस्था के लिए जितना हरियाणा को तरसना पड़ता है, उतना शायद अन्य किसी प्रदेश को नहीं। कांग्रेस हमेशा हरियाणावासियों को अपनी झोली में समझती रही, परन्तु अब हरियाणावासियों के मन में यह भावना बैठ गई है कि राष्ट्र का अर्थ केवल कांग्रेस नहीं। जब तक हरियाणा अपने पैरों पर खड़ा होकर इतिहास से विरासत में मिली अपनी गरिमा को संभालते हुए अपनी अलग पहचान की खातिर सीना तानकर खड़ा नहीं होगा, तब तक उसके साथ न्याय नहीं होगा। इसी बात ने हरियाणा की जनता को देवीलाल के न्याय-युद्ध के साथ जोड़ा, और जहां-जहां से उसका विजय-रथ गुज़रा, वहां-वहां जैसे विजय की लकीर खींचता चला गया।

परन्तु हरियाणा की यह विजय देवीलाल के लिए भी कोई फूलों की सेज रहने वाली नहीं है। चुनावों के समय मोहक नारे दे देना अलग बात है, केन्द्रीय सत्ता के विरोध में लोगों को भड़का देना भी क्षणिक आवेग सिद्ध हो सकता है। असली कसौटी तो अब देवीलाल के सामने आयेगी जब वे अपने उन नारों को पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ेंगे और हरियाणा को ग्रष्ठाचार से मुक्त शासन देंगे। कांग्रेस से यदि कोई शिकायत हरियाणा क्या, समस्त देशवासियों को है तो यही है कि

उसमें भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार तथा चाटुकारिता का बोलबाला है। पहले जिस प्रकार देवीलाल के सुपुत्र तस्करी में पकड़े गए हैं, और उसके बाद देवीलाल को उससे सम्बद्ध विच्छेद की घोषणा करनी पड़ी थी, यदि वैसी घटना आगे भी दोहरायी गई, और मुख्यमंत्री बनकर भी यदि देवीलाल जनता को भ्रष्टाचार से मुक्त होने का शासन और आश्वासन नहीं दे सके, तो किसी दिन देवीलाल की भी वही गति हो सकती है जो आज बंसीलाल की हुई है। यह एक ऐसा सबक है जो प्रत्येक राजनेता को हमेशा याद रखना चाहिए, लेकिन जिसे याद रखने वाले दिरले ही लोग होते हैं। लोकतंत्र की विशेषता यही है कि आप जनता को कुछ समय के लिए बेवकूफ बना सकते हैं, परन्तु सदा के लिए बेवकूफ नहीं बना सकते। जो जनता आपको अपने सिर पर बैठाती है, वही जनता अपनी आशायें पूरी न होने पर आपको पांव तले रौंदने में भी संकोच नहीं करेगी। राजनीति में से जिस तरह नैतिकता हवा हो गई है, सांप्रदायिकता उभर रही है, विघटनकारी शक्तियों को अपने सियासी फायदों के लिए साधन बनाया जा रहा है, यदि उनसे मुक्ति नहीं मिली तो कंवल मोहक नारे अधिक दूर तक नहीं ले जा सकते। भारत की जनता व्यक्ति-पूजा की हिमायती रही है, परन्तु वही भारत की जनता उचित अवसर आने पर व्यक्तियों को धराशायी करने से भी बाज़ नहीं आती। जो स्वच्छ छवि के लिए विख्यात थे, जब वे स्वच्छ नहीं रहे, तो जो स्वच्छ छवि के लिए विख्यात नहीं हैं वे जब तक अपनी स्वच्छता का विश्वास जनता के मन में बिठाये रखेंगे, तब तक तो ठीक, अन्यथा काल की गति उन्हें भी कहीं का नहीं छोड़ेगी। पानीपत का मैदान फिर अपनी कहानी दोहरायेगा।

२८ जून १९८७



“हिन्दुस्तान” को तीन बार भाषाई (दैनिक) पत्रों में प्रथम स्थान मिला, और तीनों बार ही ऐसा संयोग बना कि पत्र के जिस अंक को पुरस्कृत घोषित किया गया, उसे निकालने का श्रेय क्षितिश जी को था, क्योंकि उस सप्ताह रात की ड्यूटी पर वे ही थे।”

-गंगाधर इंदूरकर

(विशेष संवाददाता, 'नवभारत टाइम्स')

डी-८८, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली

लोकतंत्र के लिये अशुभ

गत सप्ताह राज्यसभा के अध्यक्ष उपराष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा के साथ सत्तासीन पक्ष के लोगों ने जिस प्रकार का व्यवहार किया, उसे लोकतंत्र के लिये किसी भी तरह से शुभ नहीं कहा जा सकता। विपक्षी दल तो यह मानकर चलते हैं कि हमारा काम सत्तारूढ़ दल की ओर से प्रस्तुत संसदीय गतिविधियों में अड़ंगा लगाना है, हालांकि उनका दृष्टिकोण प्रायः रचनात्मक न होकर निषेधात्मक ही अधिक होता है। परन्तु फिर भी वे क्षमा के योग्य हैं। यदि उन्हें विरोध करने का कोई रचनात्मक कार्य दिखाई नहीं देता, तब वे कोलाहल करें और संसद का कार्य आगे न बढ़ने दें, तो कुछ कुछ बात समझ में आती है। परन्तु जब सत्तारूढ़ दल का लोक सभा और राज्यसभा दोनों में पूर्ण बहुमत हो और उनकी अनुमति के बिना वहां कोई भी प्रस्ताव पास न हो सकता हो, तो उनकी ओर से अध्यक्ष की विवशता को स्वीकार न करना, बार-बार टोका-टोकी करना और कोलाहल करना कहां तक उचित है? आखिर प्रत्येक सभा के अपने कुछ कायदे कानून होते हैं, और संसद की गरिमा का तो अपना महत्त्व है। फिर जब व्यवस्था-निर्माण के प्रति जिम्मेदार लोग ही उसका उल्लंघन करने लगे, तो लोकतंत्र कब तक सुरक्षित रहेगा? यह तो वही बात हुई कि बाड़ ही बाग को खाने लगे तो वृक्षों के फल सुरक्षित नहीं रह सकते।

तेलुगू देशम् के पी. उपेन्द्र ने आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल के संसद द्वारा स्वीकृत सीमा से अधिक व्यय करने के बारे में जब कुछ विवरण देना चाहा तो सभापति ने उसकी अनुमति दे दी। परन्तु इका के सदस्यों को यह सहन नहीं हुआ और वे इस कदर मर्यादा का उल्लंघन करने लगे कि अन्त में डॉ० शंकर दयाल शर्मा को यहां तक कहना पड़ गया कि जब तक मैं इस कुर्सी पर हूँ, तब तक राज्य-सभा के सदस्यों के अधिकार की अपने खून के आखरी कतरे तक रक्षा करने की कोशिश करूंगा। इस सदन में किसी भी मंत्री की धौंसपट्टी नहीं चल सकती। हम लोग भारत की जनता के प्रति जिम्मेदार हैं। परन्तु जब संसद-सदस्यों के साथ इका के मंत्रीगण भी कोलाहल में शामिल हो गये, तो डॉ० शर्मा को दुःखी होकर यह कहना पड़ा, "अब आप लोगों को और कुछ करने की जरूरत नहीं है, आप अपनी

पार्टी में सिर्फ यह तय कर लें कि क्या मुझे इस्तीफा दे देना चाहिए? और यदि आप लोग ऐसा तय कर लेंगे, तो मैं तुरन्त इस्तीफा दे दूंगा।”

अफसोस की बात यह है कि उस समय प्रधानमंत्री भी सदन में मौजूद थे। परन्तु राज्यसभा की मर्यादा की रक्षा करने के लिये कोई कदम उठाने की बजाय वे सदन से उठकर चले गये। कहा जाता है कि उसी दिन शाम को कुछ वरिष्ठ मंत्री प्रधानमंत्री से मिले और उन्होंने स्थिति की गम्भीरता से प्रधानमंत्री को परिचित कराया। तब प्रधानमंत्री ने कहा बताया जाता है कि यदि डा० शर्मा इस्तीफा देना चाहते हैं तो दे दें, उन्हें रोकता कौन है? तब वरिष्ठ मंत्रियों ने उन्हें समझाया कि इससे सरकार का संकट बढ़ जायेगा, इसलिये इस स्थिति तक नौबत नहीं आनी चाहिये। तब वरिष्ठ मंत्री गण डा० शर्मा के पास गये और उनसे जाकर कहा कि आपके आदेश की और विवशता की अवहेलना करना हममें से किसी का उद्देश्य नहीं है। जो अशोभनीय काण्ड हो गये हैं, उसे भूल जायें। अगले दिन प्रधानमंत्री भी डा० शर्मा से मिले, और डा० शर्मा अगले दिन जब राज्यसभा में पहुंचे तो सबने उनका उत्साह से स्वागत किया।

इस प्रकार यह काण्ड तो समाप्त हो गया, परन्तु सभापति ने जिस प्रकार राज्य-सभा की मर्यादा की रक्षा की, उसकी पूर्व राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी और पूर्व उप-राष्ट्रपति श्री हिदायतुल्ला ने भी प्रशंसा की और उन्होंने इस प्रकार की घटनाओं को लोकतंत्र के लिये अशुभ बताते हुए भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न होने की आशा प्रकट की।

२८ फरवरी १९८८



“श्री क्षितीश जी पुरानी पीढ़ी के मिशनरी पत्रकारों की श्रेणी में से हैं। उन्होंने कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के माध्यम के रूप में पत्रकारिता को अपनाया था, न कि व्यवसाय के लिए। वे सदैव उच्च-स्तरीय आदर्श पत्रकारिता के लिए समर्पित रहे। उन्होंने अपने लेखन तथा सम्पादन में हमेशा राष्ट्रहित को सर्वोपरि महत्त्व दिया। किसी भी ‘वाद’ या ‘दल’ की अपेक्षा वे राष्ट्र को सर्वोपरि मानने वाले प्रमुख राष्ट्रवादी पत्रकार हैं।”

-शिवकुमार गोयल, पत्रकार
बीचपट्टी, पिलखुला, उत्तर प्रदेश

हवा का रुख

अनेक विविधताओं और अनेक विचार-तरंगों से भरे ७० करोड़ की आबादी वाले भारत जैसे विशाल देश में केवल ६० लाख मतदाताओं के आधार पर होने वाले १० उप-चुनावों से कोई निर्णायक निष्कर्ष निकालना शायद बुद्धिमानी न हो। परन्तु जिस तरह एक छोटा सा कंकर भी तालाब में फेंकने पर लहरों की एक ऐसी परम्परा को जन्म देता है जो तालाब के दूसरे किनारे तक पहुंच कर ही शान्त होती है, भले ही वहां तक पहुंचते-पहुंचते उसका वेग और आवेग कितना ही कम क्यों न हो जाये। इसी प्रकार हाल में ही जो देश में उप-चुनाव हुए हैं, उनसे कोई अन्तिम परिणाम निकाले बिना भी हवा के रुख का आभास तो मिलता ही है। इन उप-चुनावों में एकदम विपक्ष या सर्वथा सत्ता-पक्ष की सफलता की घोषणा भले ही न की जाये, परन्तु सारे देश का ध्यान इलाहाबाद के जिस चुनाव की ओर था, उस चुनाव में विपक्ष ने विजय प्राप्त करके सत्ता पक्ष के लिये चुनौती का द्वार खोल दिया है।

अब सभी राजनीतिक विश्लेषणकर्त्ता यह कह कर सुखरु होना चाहते हैं कि इलाहाबाद में श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की विजय तो निश्चित ही थी। परन्तु जिस प्रकार सत्ता-पक्ष ने वहां अपने मंत्रियों आलाकमान और अन्य कार्यकर्त्ताओं द्वारा और मुख्यमंत्री श्री वीर बहादुर सिंह ने इलाहाबाद के विकास के लिये ८० करोड़ रुपया खर्च करने का वायदा करके तूमार बांधा था, वह सब धरा रह गया। विश्वनाथ प्रताप सिंह ने एक लाख दस हजार मतों की बढ़त लेकर जिस प्रकार विजय-दुंदुभि बजाई, उसने कांग्रेस के दिग्गजों का भी पसीना छुड़वा दिया। भले ही प्रधानमंत्री राजीव गांधी कहते रहे कि उप-चुनाव के परिणाम बुरे नहीं हैं, उनकी यह बात अन्य चुनाव-क्षेत्रों की दृष्टि से सही हो सकती है, परन्तु इलाहाबाद-क्षेत्र की दृष्टि से नहीं। कारण, इलाहाबाद का चुनाव केवल विश्वनाथ प्रताप सिंह और सुनील शास्त्री नाम के दो व्यक्तियों के बीच ही नहीं था, बल्कि ये दोनों व्यक्ति विपक्ष और सत्ता-पक्ष के पूर्ण प्रतीक की तरह इलाहाबाद के रण-क्षेत्र में जूझ रहे थे। इसलिये यह विजय न विश्वनाथ प्रताप सिंह की है और न ही यह पराजय सुनील शास्त्री की है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इन दोनों महानुभावों

ने सारे चुनाव में एक दूसरे के व्यक्तित्व के विरोध में एक शब्द भी नहीं कहा। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि यहां व्यक्तियों से बढ़कर कुछ और अहम् मसले दांव पर लगे हुए थे।

अब तक प्रायः सब चुनाव जातिवाद के आधार पर लड़े जाते रहे हैं। इलाहाबाद के अन्दर भी कांग्रेसी नेता यही समीकरण बिठाते रहे कि इतने वोट ब्राह्मणों के हैं, इतने वोट ठाकुरों के हैं, इतने कायस्थों के हैं और इतने पिछड़े वर्गों के हैं। इसी समीकरण के हिसाब से वे ब्राह्मणों के वोट खींचने के लिये कमलापति त्रिपाठी को, कायस्थों के वोट खींचने के लिये श्री हरिकृष्ण शास्त्री को, यादवों के वोट खींचने के लिये यादव-नेताओं को और हरिजनों के वोट बटोरने के लिये हरिजन-नेताओं को बुलाकर उनसे चुनाव-प्रचार करवाते रहे। इस समीकरण के हिसाब से अन्य वर्गों के मुकाबले में ठाकुरों के वोट संख्या में कहीं भी २१ नहीं बैठते थे। इसलिये आलाकमान को उम्मीद थी कि ठाकुरों के सारे वोट भी राजा साहब को मिल जाएं तो अन्य वर्गों के वोटों को बटोर कर ही वे राजा साहब का बाजा बजवा देंगे। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि बाजा राजा साहब का नहीं बजा, बल्कि किसी और का बजा। (सुनील शास्त्री का बाजा बजने की बात कहने या समझने की बात सरासर गलत होगी।) राजा साहब को सभी वर्गों के मतदाताओं ने वोट दिये और एक तरह से सिद्ध हुआ कि यह पहला चुनाव था जिसमें किसी उम्मीदवार की जातिवाद के आधार पर विजय नहीं हुई। और तो और, जिन हरिजनों के वोटों पर बहुजन समाज के नेता श्री कांशीराम अपना एकाधिकार समझते थे, उन हरिजनों के भी काफी वोट राजा साहब के पक्ष में पड़े। तभी तो सुनील शास्त्री (कांग्रेस) और कांशीराम (बहुजन समाज) के कुल वोट मिलाकर भी उस संख्या तक नहीं पहुंच पाए, जितनी बड़ी संख्या के वोटों से विश्वनाथ प्रताप सिंह जीते हैं।

इस अद्भुत विजय का कारण क्या है? सारा देश जब भ्रष्टाचार के समाचारों की पीड़ा से कराह रहा था और जनता अन्दर ही अन्दर अपने आपको आहत महसूस कर रही थी, परन्तु स्वभाव से शान्तिप्रिय और मूक बनी रहने की आदत के कारण कुछ बोल नहीं पा रही थी, तब विश्वनाथ प्रताप सिंह ने उस आघात को वाणी दी। वे एक तरह से देश को भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाने के प्रतीक बन गये थे। बोफोर्स-काण्ड में प्रधानमंत्री या अन्य राजनेताओं ने दलाली ली या नहीं ली, इस विषय पर हम यहां चर्चा नहीं कर रहे हैं। परन्तु दलाली ली गई, इसके इतने प्रमाण इकट्ठे हो चुके हैं कि बार-बार इस काण्ड में लिप्त नेताओं द्वारा दलाली न लिये जाने की बात कहने पर भी जनता को विश्वास नहीं होता। विन चद्दा, हिन्दूजा-परिवार और बच्चन-परिवार को बचाने के लिये जिस प्रकार के दांवपेंच

खेले गये और जिस प्रकार तांत्रिक चन्द्रस्वामी को लपेटा गया, उससे लोगों के दिलों में संदेह और घनीभूत होता चला गया। दलाली लेने के सिलसिले में सम्भव है कि प्रधानमंत्री स्वयं पाक साफ हों, परन्तु उनके सम्बन्ध में जो संदेह के बादल खड़े हो चुके हैं, वे किसी भी कीमत पर हटाये नहीं जा सकते। जिस तरह आपातकाल के दौरान श्री जगजीवन राम ने मंत्रीमंडल से इस्तीफा देकर सारे देश में एक नई हवा बहा दी थी, कुछ-कुछ वैसी ही हवा विश्वनाथ प्रताप सिंह ने केन्द्रीय सरकार से हटकर, और बोफोर्स काण्ड में ली गई दलाली को सारे देश के सामने रख कर बहाई। अंग्रेजी की कहावत में कहा गया है "सीज़र की पत्नियों को संदेह से परे होना चाहिये (सीजर्स वाइफ मस्ट बी अबव सस्पिशन)। सामान्य जनों से राजनेताओं की जिम्मेवारी बहुत अधिक होती है। इसलिये हमारे शास्त्रकारों ने जिस अपराध के लिये सामान्यजनों को सामान्य दण्ड देने की व्यवस्था दी है, वहां राजनेताओं को उससे कई गुना अधिक दण्ड देने का विधान किया है। इसलिये राजनेताओं को अपने आचरण के ऐसे मानदण्ड स्थापित करने होंगे कि उनके बारे में जनता के मन में संदेह ही पैदा न हो। न केवल वे स्वयं पाक-साफ हों, परन्तु जनता को भी लगना चाहिये कि हमारे नेता पाक-साफ हैं। तभी उनकी प्रशासन-छवि कारगर हो सकती है, अन्यथा नहीं। विश्वनाथ प्रताप सिंह की सफलता इस बात में है कि उसने प्रधानमंत्री और उनके साथियों को जनता की नज़रों में कटघरे में खड़ा कर दिया है। अब अपनी छवि को संदेह से परे साफ-सुथरा सिद्ध करने की जिम्मेवारी उन राजनेताओं की ही बन गई है।

हवा का रुख उन राजनेताओं के लिये चेतावनी और चुनौती से भरा है। अगर उनकी छवि इसी प्रकार धूमिल रही तो अगले वर्ष होने वाले महाचुनाव में राजीव गांधी १९८४ वाली अपनी अद्वितीय विजय की कहानी नहीं दोहरा सकते। जहां यह हवा का रुख कांग्रेस के लिये एक चुनौती है, वहां विपक्ष के लिये उससे बड़ी चुनौती है। लोकतंत्र में विपक्ष को इतना सशक्त अवश्य होना चाहिये कि वह सत्ता-पक्ष का चाहे जब विकल्प बनने को तैयार हो। श्री राम मनोहर लोहिया कहा करते थे कि यदि रोटी तवे पर पड़ी रहेगी और उसे उलट-पलट नहीं किया जायेगा तो रोटी जल जायेगी। इसी प्रकार सरकार भी यदि बिना अंकुश के रहेगी और उसको उलटने-पलटने का सामर्थ्य विपक्ष में नहीं होगा, तो रोटी तो जलेगी ही, देश भी जलेगा। परन्तु जनता पार्टी का शासन यह देश देख चुका है और पांच विपक्षी दलों के मेल से बने उस शासन को जिस शौक के साथ उसने गद्दी पर बैठाया था, वैसे ही शौक के साथ उस जनता पार्टी के शासकों को सिंहासन से उतार कर कूड़े के ढेर में फेंक दिया। परन्तु इलाहाबाद के चुनाव का निष्कर्ष यह है कि यदि सारे विपक्षी दल मिल जायें तो वे फिर से वैसा ही चमत्कार कर सकते

हैं। पहले भी जनता पार्टी अपने नेताओं की महत्वाकांक्षाओं के कारण टूटी थी, और अब भी विपक्षी नेताओं का अहम् ही उनको एक नहीं होने देता। जब तक वे अपने-अपने अहम् को छोड़कर और 'राजीव गांधी को हटाओ' इस नकारात्मक घोषणा के स्थान पर कोई ठोस रचनात्मक कार्य देश के सामने नहीं रखेंगे, और उसके प्रति समर्पित नहीं होंगे, तब तक वे कभी कांग्रेस का विकल्प नहीं बन सकते। क्या चन्द्रशेखर और बहुगुणा वैसा कर पायेंगे? विश्वनाथ प्रताप सिंह की विजय ने उनके सामने एक अवसर उपस्थित किया है। अगर वे यह अवसर चूक गये तो....।

२६ जून १९८८



"उनकी लेखनी ने 'आर्य-जगत्' को समाज का मूर्धन्य पत्र बना दिया है। विविध सामयिक समस्याओं पर उनके सम्पादकीय लेखों की दो-दूक स्पष्टवादिता, और निर्भीक दिशा-निर्देश के कारण इस 'साप्ताहिक' की वैसी ही प्रतीक्षा सभी आर्य-सामाजिक परिवारों में की जाती है, जैसे दूरदर्शन पर किसी मनचाहे धार्मिक सीरियल की होती है।...क्षितीश जी ने अपने आचरण से डी०ए०वी० और गुरुकुल पक्षों की अदृश्य (विभाजक) रेखा को पार करके सब को निकट लाने का स्तुत्य प्रयास किया है।"

"उन्हें वक्ता के रूप में जब विशाल सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान देने के लिए मंच पर बुलाया जाता है, तब 'माइक' को उनके कद के अनुरूप नीचा करना पड़ता है। किन्तु जब वे ओजस्वी भाषा में धाराप्रवाह बोलने लगते हैं, तो लगता है कि उनके लिए माइक अनावश्यक है; और इस लघु काया में अथक महाप्राण विद्यमान हैं।"

-धीरेन्द्रकुमार विद्यालंकार

पत्रकार

डी-१/१६, मॉडल टाउन, दिल्ली

कांग्रेस का यह कैसा विकल्प?

महात्मा गांधी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस को समाप्त कर देना चाहा था, परन्तु भारत के लिये कांग्रेस एक ऐसी अमरबेल की तरह सिद्ध हुई जो गत ४० वर्षों से (एक—दो वर्षों को छोड़कर) निरन्तर सत्ता के सिंहासन पर विराजमान है। कहते रहिये कि वह गांधीवादी कांग्रेस नहीं है या नेहरू वाली कांग्रेस नहीं हैं, अब तो यह इंका (इन्दिरा गांधी कांग्रेस) है। परन्तु इन्दिरा गांधी के दिवंगत हो जाने के पश्चात् कांग्रेस के साथ उनका नाम जोड़े रखने की कोई व्यवहारिक तुक नहीं है। किसी रूप में सही कांग्रेस है, और जिस तरह प्रत्येक सत्तासीन दल से आम जनता की शिकायतें पूरी न होने के कारण जो असन्तोष रहता है, वह भी बदस्तूर कायम है। जब यह असन्तोष घनीभूत हो जाता है, तो कांग्रेस का विकल्प तैयार करने की मुहीम चलती है। एक बार यह मुहीम सफल हो चुकी है, पर उस सफलता में शायद आपतकाल लागू करने के कारण हुई ज़बरदस्त प्रतिक्रिया ही थी। जिस उत्साह के साथ कांग्रेस को पराजित करके जनता पार्टी शासन में आयी, उससे भी बढ़कर निरुत्साह के साथ वह अपदस्थ भी हो गई। कांग्रेस फिर ज्यों की त्यों दनदनाने लगी।

अब फिर असन्तोष का लावा भूगर्भ फोड़कर निकला, तो जो बंगलौर राजनीतिक पार्टियों को तोड़ने के लिए मशहूर रहा, उसी बंगलौर में श्री जयप्रकाश नारायण के जन्मदिवस के अवसर पर ११ अक्टूबर को विपक्षी दलों ने मिलकर एक नया दल बना लिया, जो उत्तर भारत में जनता दल के नाम से, और दक्षिण भारत में जनता पार्टी के नाम से जाना जायेगा। इस नये दल को कांग्रेस के सशक्त विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है और वर्तमान प्रशासन से असन्तुष्ट जनता इस दल से बहुत आशाएं बांध रही है। परन्तु जनता दल के निर्माण के बावजूद उसमें सम्मिलित दलों के नेताओं के दिलों में अभी तक दूर—दूर तक कहीं सौमनस्य दिखाई नहीं देता। जनता पार्टी के नेता जो विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व से रुठे हुए थे, वे किसी तरह मान—मनौबल से माने भी तो बहुगुणा किसी तरह भी अपने कोप—भवन से निकलने को राजी नहीं हैं। उधर कांग्रेस के नेता उन्नीकृष्णन् इस बात से खार खाये बैठे हैं कि समस्त विपक्ष ने मिलकर पहले जो 'समाजवादी

जनता दल' नाम रखा था, उस नाम में से समाजवादी शब्द को क्यों छोड़ दिया गया; अर्थात् उनको विपक्षी दलों की एकता के बजाये 'समाजवादी' शब्द से अधिक मोह है। समाजवाद की क्या परिभाषा है? और उसका अर्थ क्या है? तथा जिन देशों से समाजवाद की परिभाषा चली थी अब उन्हीं देशों में वहां के निवासी समाजवाद के नारे को दूर से नमस्कार करने को तैयार बैठे हैं, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं। जिनके पास चन्द शब्दों के सिवाय और कोई सम्पदा न हो, वे इसी प्रकार केवल शब्दों के लिए ही लड़ें—मरें, तो आश्चर्य नहीं। अब केवल लोकदल, जनता पार्टी और जनमोर्चा, इन तीनों घटकों ने मिलकर ही जो जनता दल बनाया है, वह एक तरह से इन तीनों दलों का जनता पार्टी में ही विलय जैसा है। इस नये दल का झंडा और चुनाव चिह्न भी लगभग जनता पार्टी वाला ही है। शायद चन्द्रशेखर को मनाने के लिये यह सब हुआ हो अन्यथा अपने आप को देश के भावी प्रधानमंत्री के रूप में सोचने वाले चन्द्रशेखर इतनी आसानी से विश्वनाथ प्रताप सिंह को नेता मानने को तैयार नहीं होते। इस सारे तालमेल में बहुगुणा को अपना कोई गुणात्मक अस्तित्व दिखाई नहीं दिया, इसलिए वह इस गठबन्धन से जानबूझ कर अलग ही रहे।

कहने को यह नया दल कांग्रेस का विकल्प है और इसका घोषणा-पत्र एक पूरा लम्बा बही खाता है। परन्तु इसके मूल सिद्धान्त अभी तक वही हैं जो कांग्रेस के रहे हैं—लोकतंत्र, समाजवाद और सम्प्रदाय-निरपेक्षता। कांग्रेस यदि २० सूत्रों पर जोर देती है, तो नये दल की कार्यकारिणी ने जो पहले अपना घोषणा-पत्र जारी किया था, (उसका अन्तिम रूप एक महीने के अन्दर तैयार किया जायेगा), उसमें ७२ सूत्र हैं। क्या सूत्रों की संख्या घटने-बढ़ने से ही ऐसा कायाकल्प हो जायेगा जो कांग्रेस का विकल्प बन कर उसे केन्द्र से अपदस्थ कर सके? यह ठीक है कि "भ्रष्टाचार बन्द करो, रोजगार का प्रबन्ध करो" का नारा जनता को आकर्षित करता है। परन्तु भ्रष्टाचार और सत्ता का अविनाभाव सम्बन्ध है। जो दल सत्ता में नहीं है, उसको भ्रष्टाचार का अवसर ही नहीं है। सत्ता में आने के बाद वह दल भी भ्रष्टाचार से अलिप्त रहेगा, इसकी कोई गारंटी नहीं है। इसके अतिरिक्त देश की ८० करोड़ आबादी के लिए रोजगार का प्रबन्ध करना कोई खाता जी का घर नहीं है। किसी भी देश की सरकार के लिए यह सदा दिवास्वप्न ही बना रहेगा। हां, संविधान में या चुनावी घोषणा-पत्र में इसे शामिल करके जनता के मन में स्वर्णिम आशा का अंकुर तो जगाया ही जा सकता है।

यह नया दल विचारधारा की दृष्टि से कांग्रेस से किसी भी हालत में भिन्न नहीं। आप कांग्रेस को यदि खिलाड़ियों की 'प्रथम एकादश टीम' कहें, तो इसको 'द्वितीय एकादश टीम' कह सकते हैं। वह अपने क्रीड़ा विधान में, अपनी शैली में और अपने

तौर-तरीकों में कहीं भी उससे भिन्न नहीं है। जो कांग्रेस की चिन्तन-प्रणाली से और विचार-कल्पना से रहित न हो, वह कैसे विकल्प (विगत-कल्प) होगी? वह तो सदा संकल्प (कल्प-सहित) ही होगी। असल में पिछले ६०-७० सालों में हमारे देश की परम्परा में स्वाधीनता-आन्दोलन के समय से ही कांग्रेस की विचारधारा कुछ ऐसी रच-पच गई है और यहां की जनता के स्वभाव के कुछ ऐसी अनुकूल बैठ गई है कि बच्चा जैसे मां के पीटने पर रोता है, फिर भी मां-मां ही पुकारता है, वैसे ही इस देश की जनता भी कांग्रेस से विशुद्ध होकर भी इतने सालों से उसी को अपनी छाती पर बैठाये हुए है।

कांग्रेस न दक्षिण-पंथी है, न वामपंथी है। कहने को वह संप्रदाय-निरपेक्षता को मानती है, परन्तु व्यवहार में अल्पसंख्यकों के तुष्टिकरण से बाज नहीं आती। वह न हिन्दू है, न मुस्लिम। वह पोप का भी उसी प्रकार उत्साह से स्वागत करती है, जिस प्रकार सती-प्रथा का समर्थन करने वाले और हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश का विरोध करने वाले नेताओं को खुली छूट देती है। वह किसी बात में कट्टर नहीं है, वह सिद्धान्त-हीन है, परिभाषाहीन है। वह चूँचू का मुरब्बा है और इसीलिए इस देश की जनता को रास आती है। इस देश का विशाल हिन्दू समाज भी तो बहुत कुछ इसी तरह का है। यही कारण है कि कांग्रेस इतने सालों से सत्ता में है। एक तरह से भारतीय जनता ने विचारों का लोकतंत्रीकरण किया है। उसी तरह कांग्रेस ने लोकतंत्र का भारतीयकरण किया है। शायद सर्वजनप्रियता बटोरने के लिए यह दुल-मुल नीति यकीनी ही अधिक कारगर होती हो।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कांग्रेस-रूपी महावृक्ष से निकले छोटे-छोटे पौधे आपस में मिलकर भी उस महावृक्ष को हटा सकेंगे, इसमें संदेह है। यदि कांग्रेस का विकल्प तैयार करना ही है तो दो ही तरह से हो सकता है—क्या तो ऐसी रक्त-क्रांति का कुठार हो जो उस महावृक्ष को काट फेंके, अन्यथा ऐसी दृढ़ विचारधारा का अलग महावृक्ष खड़ा किया जाये, जो कांग्रेस-रूपी महावृक्ष के मुकाबले में समानान्तर खड़ा हो सके और वह इस देश के जलवायु और पर्यावरण के अनुकूल हो। उसका बीज भी इसी देश की मिट्टी से अंकुरित हुआ हो। इस दृष्टि से सोचने पर कांग्रेस का सशक्त विकल्प एक ऐसी प्रखर हिन्दुत्ववादी विचारधारा वाली राजनीतिक पार्टी ही हो सकती है, जो इस देश की ८५ प्रतिशत जनता की भावनाओं के अनुकूल हो। वातावरण में इस प्रकार की सुगन्ध दिखाई तो देती है, परन्तु सौगन्ध-पूर्वक अपने आपको विशुद्ध हिन्दुत्ववादी पार्टी कहने वाला कोई राजनीतिक दल दिखाई नहीं देता। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि पश्चिम की विचारधारा से प्रभावित बुद्धिजीवियों ने और राजनेताओं ने हिन्दू शब्द का इतना अवमूल्यन कर दिया है कि आज इस नाम से देश का विशाल

बहुमत एकत्र होने को तैयार नहीं, अन्यथा हिन्दू महासभा राजनीतिक दृष्टि से कभी इतनी दुर्बल न होती।

यहां हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हिन्दुत्व से हमारा अभिप्राय पुरी के शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित जड़धर्मी हिन्दुत्व नहीं है। हम उस प्रखर राष्ट्रवादी, वेदानुमोदित, तर्कसंगत और विज्ञान-सम्मत प्रगतिशील हिन्दुत्व के पोषक हैं, जिसके लिए आर्य समाज का जन्म हुआ। अंधविश्वासों और कुरीतियों से ग्रस्त हिन्दुत्व के हाथों में देश का भविष्य सौंपने से तो पतन का ही मार्ग प्रशस्त होगा। समस्त संप्रदायों से ऊपर 'राष्ट्र-देवो भव' की उपासक विचारधारा और जन-जन को भारत की अस्मिता और सांस्कृतिक 'स्व' से जोड़ने वाली हिन्दुत्ववादी विचारधारा ही इस देश का कल्याण कर सकती है और वही कांग्रेस का सशक्त विकल्प भी बन सकती है।

२३ अक्टूबर १९८८



आर्यसमाज की स्थापना के पीछे ऋषि दयानन्द का उद्देश्य आर्यावर्त के प्राचीन गौरव को और उसकी अस्मिता को जगाना था; जबकि कांग्रेस का उद्देश्य प्राचीन गौरव के बजाय ब्रिटिश शासन में ही अपने-आपको गौरवान्वित समझने का प्रच्छन्न परामर्श था। सन् १८५७ की राज्यक्रान्ति के बाद भारत के बुद्धिजीवियों को अपने पक्ष में करने के लिए जहां लॉर्ड मैकाले की शिक्षा-पद्धति के स्कूल-कॉलेज खोलने का अभियान प्रारम्भ हुआ, वहां १८७५ से आर्यसमाज के माध्यम से 'स्व' की ओर अभिमुख होने वाले बुद्धिजीवियों को 'पर' की ओर प्रेरित करने के लिए १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई। एक तरह से कहा जा सकता है कि आर्यसमाज के आन्दोलन के जवाब में ही 'लॉर्ड ह्यूम' ने अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों के बीच में अंग्रेज़-मुखापेक्षी राजनीतिक चेतना जमाने के लिए कांग्रेस की स्थापना की थी।

'असलियत क्या है?' पृष्ठ ११

सुभाषित

विरम विरभायासादस्माद् दुरध्यवसायतो
विपदि महतां धैर्यध्वंसं यदीक्षितुमीहसे।
अयि जडमते कल्पापाये व्यपेत-निजक्रमाः
कुशल-शिखरिणः क्षुद्रा नैते न वा जलराशयः॥

—महाकवि भर्तृहरि, नीतिशतक, श्लोक १२५

यदि विपत्ति में लखना चाहो महाजनों का धैर्य—विनाश।
तो हे जडमति! तज दो, तज दो, अपना तुम यह व्यर्थ प्रयास॥
क्योंकि उन गिरि-शैलों के सम महापुरुष भी होंगे क्षुद्र।
नहीं यथा कल्पान्त समय में होने वाले नष्ट समुद्र॥

— गोपालदस गुप्त

नाच न जाने आंगन टेढ़ा

पंजाब का आतंकवाद शांत होने के बजाय सरकार के विपरीत दावों के बावजूद निरन्तर वृद्धि पर ही है और अब ऐसा लगता है कि आतंकवाद का मुख्य केन्द्र पंजाब के बजाय जम्मू-कश्मीर बनता चला जा रहा है। पिछले लगभग एक वर्ष से कश्मीर निरन्तर आये दिन विस्फोटों और चाहे जब बन्दों की हत्या के सिलसिले से गुज़रता हुआ भय और आतंक के राज्य में जी रहा है। कांग्रेस और नेशनल काँग्रेस की मिलीजुली सरकार इस स्थिति को संभालने में सर्वथा विफल रही है। स्वयं इन दोनों राजनीतिक पार्टियों के अन्दर इतना आपसी मतभेद है कि ये संगठित रूप से इस स्थिति से निबटने के लिए न कोई नीति निर्धारित कर पाते हैं और न उसे कार्यान्वित कर पाते हैं। इन्का की हालत तो और भी ज्यादा खराब है। उसके सामान्य कार्यकर्ताओं में ही नहीं, उसके नेताओं में भी आपसी मतभेदों की भरमार है। वे एक दूसरे की टांग खींचने में लगे रहते हैं। ऐसी स्थिति में डॉ० फारुख अब्दुल्ला की सरकार को विफल होना ही था।

हम पहले भी संकेत कर चुके हैं कि कश्मीर के सम्बन्ध में जनरल ज़िया ने अपने जीवन-काल में जो योजना बनाई थी और जिस पर बड़ी चतुराई से अमल करना शुरू किया था, वही योजना ज़िया के मरने के बाद भी बदस्तूर कायम है। एक

संसद सदस्य ने उस गुप्त योजना की पूरी तफ़सील केन्द्रीय सरकार को भेजी थी। केन्द्रीय सरकार ने उस योजना के कुछ मुद्दों से राज्य सरकार को आगाह भी किया था। परन्तु प्रशासनिक शिथिलता का जो अवगुण सर्वत्र विद्यमान है उससे कश्मीर की सरकार भी मुक्त कैसे रहती?

जब से बेनज़ीर भुट्टो आयी हैं, उन्होंने बेशक भारत से सम्बन्ध सुधारने का प्रयत्न किया है। परन्तु ज़िया की योजना को वे भी समाप्त नहीं कर सकीं, क्योंकि तब तक वह योजना कार्यान्वित होने के कई चरण आगे बढ़ चुकी थी। फिर बेनज़ीर की अपनी भी मजबूरियाँ हैं। उनके विदेश-मन्त्री वही श्री याक़ूब खान हैं जो जनरल ज़िया के समय भी विदेश-मन्त्री थे। सेना पर अभी भी ज़िया समर्थकों का ही वर्चस्व है। पाकिस्तान का सबसे बड़ा हिस्सा पंजाब, बेनज़ीर की विरोधी पार्टी द्वारा शासित है। स्वयं संसद में बेनज़ीर को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है। इसलिए बेनज़ीर के पांव में जैसी जंजीर पड़ी है, उसके कारण वह स्वेच्छा और स्वतन्त्रता से कदम नहीं बढ़ा सकती। अब तो कुछ पाकिस्तानी उग्रवादी उसके सफाये पर भी आमदा हैं, इसलिए उसके सुरक्षा-प्रबन्ध और कड़े किये गये हैं।

इसके अलावा चाहे भुट्टो हों, चाहे ज़िया हों और चाहे बेनज़ीर हों, पाकिस्तान की परम्परागत भारत-विरोधी नीति को बदलने का साहस कोई नहीं कर सकता। कूटनीतिक दृष्टि से यह तभी संभव है जब बेनज़ीर ऊपर से भारत के साथ संबंध सुधारने की और शिमला समझौते की दुहाई देती रहें, किन्तु अन्दर से वे भी उसी थैली की चट्टी-बट्टी बनी रहें। आखिर इसी बेटे के बाप ने भी तो भारत से १००० वर्ष तक लड़ने का आह्वान किया था!

जनरल ज़िया की उस योजना के अनुसार युवकों को प्रशिक्षित करके और आधुनिक हथियारों से लैस करके कश्मीर में केवल भेजा ही नहीं गया, बल्कि कश्मीर की सीमा पर पाकिस्तानी सेना का जमाव भी बढ़ा दिया गया है, ताकि भारतीय सेना निरन्तर दबाव में रहे और अलगाववादी आतंकवादियों को सारे राज्य में दहशत फैलाने में तथा राज्य सरकार को डोँवाँडोल करने में सहायित हो। पहले कहा जाता था कि आतंकवादी अशिक्षित और बेरोज़गार लोग हैं जो निराशा के आलम में इस रास्ते पर चलने को मजबूर हुए हैं। पर अब जितने आतंकवादी गिरफ्तार हुए हैं उनसे पूछताछ करने पर पता लगा कि वे न तो बेरोज़गार थे और न अशिक्षित हैं, बल्कि खूब धनी घरों के और सुशिक्षित युवक हैं। इनमें से बहुत से स्वयं सरकारी कर्मचारी हैं या वे सरकारी कर्मचारियों के रिश्तेदार हैं। जिस कुशलता के साथ वे बमों का और आधुनिक हथियारों का प्रयोग करते हैं, उसे देखकर पुलिस और सुरक्षा-बलों के जवान भी हैरान रह जाते हैं। अभी तक पहल इन आतंकवादियों के हाथ में है। वे चाहे जब और

चाहे जहां, और कभी-कभी तो सारे सुरक्षा-प्रबन्ध वाले क्षेत्र में ही वारदातें करने को स्वतन्त्र हैं।

अब कश्मीर की जनता इतनी आतंकित है कि आए दिन किसी भी ओर से ज़रा सा संकेत मिलते ही दुकानों के दरवाज़े धड़ाधड़ बंद होने शुरू हो जाते हैं। यह बंद कौन करवा रहा है और क्यों करवा रहा है और इसके पीछे क्या प्रयोजन है यह जानने का भी कोई प्रयत्न नहीं करता। जिस जमाते-इस्लामी का कश्मीर की जनता पर प्रभाव है वह पहले ज़िया-समर्थक नहीं थी। पाकिस्तान में भुट्टो को फाँसी दिये जाने पर जमाते-इस्लामी के कार्यकर्ताओं ने ज़िया-समर्थकों के घर जलाये थे। पर अब जमाते-इस्लामी में ज़िया-समर्थकों की भरमार है। अब कश्मीर में स्वतंत्रता दिवस के दिन ज़िया-समर्थक नारे लगाना और पाकिस्तानी झंडे को फहराना नई बात नहीं रही।

इस हालत से निबटने के लिए फारुख अब्दुला की सरकार ने अखबारों पर अंकुश लगाने की नीयत से विधान-सभा में स्पेशल पावर्स प्रैस बिल पास किया है। परन्तु डा० अब्दुला ने अपनी विफलता छिपाने के लिए अपने आक्रोश का शिकार अखबारों को बनाया है। यह तो वही 'नाघ न जाने, आँगन टेढ़ा' वाली बात है। डा० अब्दुला ने राज्य में कानून और शांति की स्थापना के लिए अखबारों पर अंकुश लगाने का फैसला किया, परन्तु अब सारे देश में जिस तरह इस प्रैस बिल का विरोध हुआ, उसी का यह परिणाम है कि विधान परिषद् ने उसे स्वीकृति नहीं दी। फारुख साहब को याद रखना चाहिए कि इसी प्रकार का प्रयत्न एक साल पहले भारत-सरकार भी कर चुकी है और उसमें उसको मुंह की खानी पड़ी थी। उसके बाद बिहार सरकार ने भी वैसा ही प्रयत्न किया, परन्तु इसको भी अपना कदम वापस लेना पड़ा। जो सरकारें अपनी अक्षमता को ढकने के लिए प्रैस पर प्रहार करना चाहती हैं उनको यह नहीं भूलना चाहिए कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतन्त्र का प्राण है, और यदि वह स्वतंत्रता ही आपने छीन ली तो आप में और किसी तानाशाह में क्या अन्तर रहा। कोई तानाशाह अपनी आलोचना सुनने को तैयार नहीं होता। परन्तु लोकतन्त्र में प्रत्येक सरकारी अधिकारी को, यदि वह गलती करता है, अपनी आलोचना सुनने के लिए तैयार रहना होगा, क्योंकि अन्ततः वह जनता-जनार्दन के प्रति ही उत्तरदायी है, जबकि तानाशाह अपने सिवा किसी और के प्रति उत्तरदायी नहीं होता।

फारुख साहब ने विधान सभा में प्रैस बिल को पेश करते हुए प्रैस को देशभक्ति का भी वास्ता दिया है। परन्तु जिस दिन प्रैस को देशभक्ति का पाठ सरकारी अधिकारियों से सीखना होगा, वह देश का सबसे बड़ा दुर्दिन होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि पत्रकारों में काली भेड़ें नहीं होतीं। न ही इसका यह अर्थ कि आजकल

खोजी-पत्रकारिता के नाम पर जो एक नये ढंग की पीत-पत्रकारिता चली है, हम उसका समर्थन करना चाहते हैं। उनसे निपटने के लिए तो सरकार को पहले ही सब तरह के कानूनी अधिकार मिले हुए हैं। इसलिए यदि किसी अखबार द्वारा नितांत सद्भावना से किसी सरकारी अधिकारी की किसी विशेष दुर्बलता की ओर संकेत किया जाता है, तो उसका उपाय प्रैस को दंडित करना नहीं, बल्कि उस दुर्बलता को दूर करना है। सत्ता के नाम पर और पार्टी के नाम पर तथा परिवार के नाम पर किये जा रहे भ्रष्टाचार का यदि कोई अखबार भण्डाफोड़ करता है, तो उससे नाराज़ होने के बजाय उसका आभार मानना चाहिए। क्योंकि उसने उस फोड़े का ठीक स्थान बता दिया है, जहां डाक्टर का घीरे का चाकू चलना चाहिए।

जहां तक अखबारों की देशभक्ति का सवाल है, उसके लिए पाकिस्तान के साथ हुए गत तीन युद्धों का उल्लेख ही काफी है। उन युद्धों की विजय में अखबारों का योगदान हमारे बहादुर सैनिकों से कम नहीं है। इसलिए समझदारी इस बात में है कि कश्मीर को भावी गृह-युद्ध से बचाने के लिए आप ईमानदारी से जो भी प्रयत्न करें उसमें अखबारों का भी पूरा विश्वास और सहयोग प्राप्त करें। यदि अखबारों को अपना शत्रु समझेंगे तो आप अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारेंगे, क्योंकि अखबार उस जनता की आवाज़ आपके कानों तक पहुंचाते हैं, जिसकी आवाज़ सुनने के लिए निहित-स्वार्थों के कारण आपके कान बहरे हो चुके हैं। इसलिए प्रैस-बिल मत लाइए, प्रैस का बल अपने साथ लाइये, और उस प्रैस-बल के साथ अपना मनोबल मिलाइए। तभी आप कश्मीर की रक्षा कर सकेंगे।

३ सितम्बर १९८६



कुछ गलत धारणाएं और भी हैं, जो इस समय समस्त राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त हैं। भारत सरकार की गलतियां मूलतः ५० नेंहरू की गलतियां हैं। पिछले ४३ वर्षों से विभाजन के बाद पंजाब से आए शरणार्थी यदि आज भी खानाबदोश बने हुए हैं, तो इसका अपराध किसके सिर है? भारत के शेष भागों में सभी शरणार्थियों का कब का पुनर्वास हो चुका, बल्कि अधिकांश लोग तो पहले से कहीं अधिक अच्छी स्थिति में हैं। पर कश्मीर के ही पाक-अधिकृत क्षेत्रों से आए शरणार्थी आज भी अनाथ हैं। उनका अपराध इतना ही है कि वे हिन्दू हैं। यदि वे भी मुसलमान होते तो शेख अब्दुल्ला के शासन में उनको भी कश्मीर में शरण मिल जाती। अब तो अनुच्छेद के अधीन उनकी नियति बन्धक बन गई है।

— 'कश्मीर झुलसता स्वर्ग', पूर्व-कथन

सुभाषित

दीना दीनमुखै: सदैव शिशुकैराकृष्ट-जीर्णाम्बरा।
क्रोशद्भि: क्षुधितैर्नरेर्न विधुरा दृश्येद्धि चेद् गेहिनी।
याज्वाभंग भयेन गद्गदलसत्-बुद्दयद्-विलीनाक्षरं
को देहीति वदेत् स्वदग्ध-जठरस्थार्थं मनस्वी जनः॥

—महाकवि भर्तृहरि

रोते क्षुधित, दीनमुख शिशुओं द्वारा जिसका अंबर झीन
खींचा जाता हो नित ऐसी यदि न लखे गृहिणी को दीन।
यान्चा—भंग—भीति से गद्गद स्वर में भी होकर असमर्थ
'मुझको दो' यह कौन मनस्वी कहता जले पेट के अर्थ?॥

—गोपालदास गुप्त

विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र (१)

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। अब सोवियत संघ, चीन, बर्मा, पूर्वी जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया जैसे वामपंथी देशों में जिस प्रकार लोकतंत्र की नई लहर चलनी शुरू हुई है उसे देख-देख कर अन्दर ही अन्दर अपने इस महान् लोकतंत्र के प्रति किस भारतीय के मन में गर्व की अनुभूति नहीं होगी? संसार का और कौन सा देश पचास करोड़ मतदाताओं की कल्पना कर सकता है? मतदान की तैयारी के लिए कम से कम डेढ़ लाख कर्मचारी सारे देश में तैनात किये गये। उसके बाद कितनी पुलिस और कितने अर्द्ध-सैनिक बल और कितनी मतपेटियां और कितने मतपत्र—सब विशाल ही विशाल। उतनी बड़ी संख्या को देखकर छोटे-मोटे देश तो उसकी गिनती के बोझ से ही दब जायेंगे। अपने इस लोकतंत्र के विराट स्वरूप पर गर्व स्वाभाविक है।

महाभारत समाप्त हुआ। किस तरफ कितनी अक्षौहिणी सेना थी, यह मत पूछिये। परन्तु अब सेनाएं बैरकों में लौट गईं और रणक्षेत्र पटा पड़ा है। इतने तीव्र घमासान के बाद ठीक वैसी ही शान्ति छाई है जैसी महाभारत के युद्ध के पश्चात् कुरुक्षेत्र के मैदान में छाई हुई थी। क्या यह शान्ति शमशान-शान्ति नहीं है?

इन चुनावों में कुछ ऐसी बातें देखने में आई हैं जिनके कारण अपने इस महान् लोकतंत्र पर गर्व के साथ लज्जा से भी सिर झुक जाता है। यह ही है कि लोकतंत्र

समस्त शासन प्रणालियों में सर्वोत्तम है। परन्तु इन चुनावों ने लोकतंत्र की प्रासंगिकता पर ही प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। लोकतंत्र की शासन-प्रणाली का मूल था— जनता के द्वारा, जनता के लिए और जनता का शासन। पर अब लगता है कि जनता के बजाय अब कुर्सी के लिए, कुर्सी द्वारा, कुर्सी का शासन हावी होता चला जा रहा है। हमने सारे संसार में भारत की सहिष्णुता का और सहअस्तित्व की भावना का खूब ढोल पीटा है और ढोल पीटा है इस बात का भी कि हमने अहिंसा के द्वारा और सत्य के आग्रह (सत्याग्रह) द्वारा स्वराज्य प्राप्त किया है। परन्तु इन चुनावों ने उन सबको झुठला दिया है।

जिस प्रकार हमारे लोकतंत्र में धीरे-धीरे घुन लगता गया और विकार बढ़ता गया, उसी का यह परिणाम है कि आज हमको अपने लोकतंत्र के लिए लज्जित होने का अवसर भी उपस्थित हो गया है। कहां तो हम यह सोचते थे कि अन्य देश हमारे लोकतंत्र से प्रेरणा ग्रहण करेंगे, कुछ सबक सीखेंगे और अपने यहां भी लोकतंत्र लायेंगे, जिसका एक उदाहरण पाकिस्तान भी है। पर इस चुनावी महाभारत के दृश्य को देखकर क्या हमारा यह महान् लोकतंत्र किसी के लिए प्रेरणादायक रह सकेगा?

नहीं, आकस्मिक कुछ नहीं है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि जैसे सब कुछ पूर्व-नियोजित है। महाकाल के द्वारा नहीं, हमारे अपने ही द्वारा। अन्यथा अहिंसा से प्राप्त लोकतंत्रीय स्वराज्य में हिंसा का क्या स्थान? परन्तु इन चुनावों के दौरान जिस तरह गोलियां चली हैं, जिस तरह बम के धमाके हुए हैं और निरीह, निर्दोष लोगों की जानें गई हैं, क्या लोकतंत्र का यह रूप एक दिन में तैयार हो गया? धीरे-धीरे जो फोड़ा पकता गया अब वही नासूर बनता जा रहा है। चुनावों की निष्पक्षता के लिए जितना बड़ा सरन्जाम और तामझाम इतनी बड़ी राशि खर्च करके एकत्र किया गया, क्या वह सब व्यर्थ नहीं हो गया? पहले कहा गया था कि इस चुनाव पर ३ सौ करोड़ रु० खर्च होगा। फिर स्वयं घोषणा की गई कि नहीं, १३ सौ करोड़ से कम खर्च नहीं होगा। यह तो सीधे-सीधे खुले खाते की बात है, जो बिना खाते की गोपनीय राशियां खर्च की गई हैं उनका हिसाब कहां है? इस इतनी बड़ी विशाल अरबों रुपए की व्यय राशि को देखकर कभी-कभी लगता है कि यह लोकतंत्र नहीं, लोकतंत्र के वेश में पूंजीतंत्र है।

पूंजीतंत्र हो भी क्यों न? देश में जितनी समृद्धि बढ़ी है, औद्योगिक उन्नति हुई है, मध्य-वर्ग के लोगों तक के जीवन-स्तर में सुधार हुआ है, उनके रहन-सहन और खान-पान में मूल्यों की दृष्टि से जो परिवर्तन हुआ है, उससे कौन आंख मीच सकता है? आज घर-घर में रेडियो है, मेज़-कुर्सी है, सोफ़ासैट है, खाना पकाने के लिए गैस है, टी० वी० सैट है — यह हर कोई देख सकता है। वेतनों

में कितनी वृद्धि हुई है? जितनी सरकारी योजनाएं बनी हैं, उनसे कितनी अधिक संख्या में लोगों को लाभ हुआ है? इस तरक्की से इन्कार नहीं किया जा सकता। पर इस समृद्धि के साथ महंगाई भी बढ़ी है, बेरोजगारी भी बढ़ी है और पैसे की कीमत निरन्तर घटी है। इस अस्सी करोड़ आबादी के देश में आज़ादी के बाद आई समृद्धि का लाभ कम से कम लगभग २० करोड़ लोगों को प्राप्त हुआ होगा।

अब भारत के मध्यम वर्ग के जीवन-स्तर की तुलना भी किसी कद्र यूरोप के मध्यम वर्ग के जीवन-स्तर से की जा सकती है। शहरों के लोग तो उसमें शामिल हैं ही, ग्रामों के अमीर किसान भी उसमें शामिल हैं। समृद्धि की आधुनिक परिभाषा में आने वाली कोई चीज़ उनके यहां भी दुर्लभ नहीं है। कारों की, और खास तौर से मारुति कारों की, जितनी संख्या बढ़ी है, वह किसी को भी चौंकाने के लिए काफी है। पर यह सारी समृद्धि केवल एक चौथाई लोगों तक सिमट कर रह गई है, जबकि शेष साठ करोड़ लोग निरीह बन कर हाशिये पर खड़े हैं। उन्हें इस देश के लिए जनसंख्या की सीमातीत वृद्धि के नाम पर अभिशाप समझा गया है। उन्हीं की गरीबी दूर करने के लिए बारम्बार योजनाएं बनती हैं, करोड़ों रु० खर्च किए जाते हैं। पर ये साठ करोड़ लोग कैसे अभागे हैं कि इनकी गरीबी दूर होने का नाम नहीं लेती। क्या उनके भाग्य में गरीबी ही लिखी है? हमारे लोकतंत्र में उसका कोई प्रतिकार सम्भव नहीं है? आखिर लोकतंत्र की रीढ़ तो यही बहुसंख्यक 'लोक' है न!

पर इस बहुसंख्यक 'लोक' को हमने समस्त दुर्गति की जड़ माना और इस जनसंख्या वृद्धि को सदा देश की प्रगति में बाधक माना। इसीलिए परिवार-नियोजन पर इतना जोर दिया गया। पर उससे जनसंख्या की वृद्धि में कोई खास अन्तर पड़ा हो, यह दिखाई नहीं देता। हमने कभी यह नहीं सोचा कि देश में जो भी नया बच्चा पैदा होता है, वह अपने साथ एक मुंह और दो हाथ लेकर पैदा होता है। उसके एक मुंह को अनाज कहां से खिलायेंगे, यह समस्या तो हमको परेशान करती रही, परन्तु मुखों की संख्या से दुगुनी संख्या में विद्यमान हाथों को रोजगार देने के लिए हमने कोई प्रयत्न नहीं किया। यह प्रयत्न किया भी तो ऊंट के मुंह में जीरे के मानिन्द। स्वयं प्रधानमंत्री स्वीकार करते हैं कि गरीबी दूर करने की जितनी योजनाएं हम बनाते हैं, उनका केवल १५ प्रतिशत ही गांवों तक पहुंच पाता है। पूछा जा सकता है कि बाकी का पिचासी प्रतिशत कहां जाता है? इसका उत्तर देने को कोई तैयार नहीं होगा, क्योंकि वह बहुत कड़वा है।

हम सोचते हैं कि गरीबों को पैसा बांटने से उनकी गरीबी दूर हो जाएगी। परन्तु देहात के उन गरीबों को खैरात का पैसा नहीं चाहिए, इज्जत की रोटी खाने के

लिए उनके हाथों को रोज़गार चाहिए। उन गरीबों के नाम से जितनी योजनाएं बनती हैं, उनमें रोज़गार गरीबों को नहीं मिलता बल्कि सरकारी कर्मचारियों को और उनके दलालों को मिलता है। इस ८५ प्रतिशत राशि का लाभ उठाने वाले वे ही लोग हैं। उनकी ही समृद्धि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है, और वे साठ करोड़ लोग, जिनका हमने ऊपर जिक्र किया है, अंधेरे में अपनी राह टटोलते रहते हैं।

कहां गया स्वराज्य का अमृत जिसे तुमने कठोर समुद्र-मन्थन के पश्चात् प्राप्त किया था? स्वराज्य की वह सुर-सरिता गांवों तक जाते-जाते क्यों सूख गई? क्यों अभी तक केवल देश का चौथाई हिस्सा लाभान्वित हुआ और बाकी तीन चौथाई हिस्सा गंगाजल की एक-एक बूंद के लिए तरसता रहा। फिर बताइये कि यह लोकतंत्र है या पूंजीतंत्र?

गंजे को नाखून देने की तरह इस लोकतंत्र में अब अपराधियों के गिरोह भी शामिल हो गए हैं। कौन सी ऐसी पार्टी है जिसने इस चुनाव में घोषित अपराधियों तक को प्रत्याशी नहीं बनाया? जो प्रत्याशी नहीं बने, उनकी सेवाएं इन प्रत्याशियों को जिताने के लिए, मतदान केन्द्रों पर कब्ज़ा करने के लिए सुरक्षित कर ली गई, और इसीलिए मतदान के दौरान लगातार हत्या, हिंसा और मारधाड़ की घटनाएं चलती रहीं। हमने पहले ही संकेत किया है कि यह सब पूर्व-नियोजित सा लगता है। अब राजनीति का जैसे अपराधीकरण होता चला जा रहा है। चुनावों से पहले बिहार में एक ऐसी ब्रिगेड तैयार करने की घोषणा की गई जो अपने हाथों में ब्लेड और उस्तरे रखेगी और मतदान केन्द्रों पर कब्ज़ा करने वालों की नाक तराशेगी। तो दूसरी एक ऐसी ब्रिगेड तैयार हुई जो अपने हाथों में तलवार रखेगी और ब्लेड से नाक काटने वाले के हाथ काट देगी। इसी पूर्व-नियोजित अपराधी-गिरोह का यह करिश्मा है कि कितने ही मतदान केन्द्रों पर जबरदस्ती कब्ज़ा किया गया। क्या हमारे लोकतंत्र के लिए चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात नहीं है कि स्वयं चुनाव आयोग ने एक हजार मतदान केन्द्रों पर पुनः मतदान की घोषणा की है।

पर फिर भी हमारा भारत महान् है। हमें संसार के सबसे बड़े इस अपने लोकतंत्र पर गर्व है।

सुभाषित

दीर्घमन्यन्नुपतिर्विनश्यति यतिः संगतसुतो लालनाद्-
विप्रोऽनध्ययनात् कुलं कुतनयात् शीलं खलोपासनात्।
हीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्-
मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात् त्यागात्ममादाद्धनम्॥

—भर्तृहरि

कुमंत्रणा से राजा का नाश होता है, संग से यति का, अधिक लाड़-प्यार से पुत्र का, स्वाध्याय न करने से ब्राह्मण का, कपूत से कुल का, दुर्जनों की संगति से शील का, शराब से लज्जा का, लापरवाही से खेती का, प्रवास से स्नेह का, प्रेम के अभाव से मित्रता का, अनैतिकता से समृद्धि का, त्याग और आलस्य से धन का नाश होता है।

विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र (२)

गत सप्ताह हमने अपने लेख में विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र पर लज्जा और गर्व दोनों एक साथ अनुभव होने की बात कही थी। पाठक पूछ सकते हैं कि यह परस्पर-विरोधी बात क्यों? क्या सम्पादक का दिमाग फिर गया है! आज उसी का उत्तर देना चाहते हैं।

मनोविज्ञान की दृष्टि से किसी-किसी व्यक्ति के अन्दर दोहरा व्यक्तित्व छिपा हुआ होता है। यों भी कहा जा सकता है कि हर एक व्यक्ति के अन्दर भी किसी न किसी मात्रा में यह दोहरा व्यक्तित्व निहित होता है—तभी तो हर एक व्यक्ति के अन्दर दैवी और आसुरी वृत्तियों का संघर्ष चलता रहता है। ऐसा विरला ही कोई व्यक्ति होगा जिसके अन्तःकरण को अपनी आसुरी वृत्तियों से संघर्ष न करना पड़ा हो। पर हम आध्यात्मिकता की उस गहराई तक बिना गये केवल समाज के उस अंश की चर्चा करना चाहते हैं जिसमें सचमुच ही परस्पर-विरोधी व्यक्तित्वों का समावेश होता है। जो समाज परिस्थिति-विशेष के वशीभूत होकर जीवन के उदात्त आदर्शों का उदाहरण प्रस्तुत करता है, वही समाज परिस्थितियां बदल जाने पर मानवीय निकृष्टता और नीचता का उदाहरण भी प्रस्तुत करने से बाज़ नहीं आता। हमारा भारतीय समाज भी बहुरंगी है, बहुमतावलम्बी है, बहुभाषी है और इसीलिये इसमें इतना वैविध्य है। इसलिये उसमें भी इस प्रकार के परस्पर-विरोधी उदाहरण प्रस्तुत करने की क्षमता की कमी नहीं है।

जिस समाज ने सारे संसार के सामने अहिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने का आदर्श प्रस्तुत किया और जिस समाज ने स्वातन्त्र्य-संघर्ष के दौरान उच्च मानवीय नैतिक मूल्यों का उदाहरण उपस्थित किया और जिस समाज ने चारों ओर तानाशाही और कट्टर साम्प्रदायिक वातावरण से घिरे होने पर भी पंथ-निरपेक्ष लोकतंत्र को स्वीकार करके सभी देशों को प्रेरणा दी, उसी समाज ने आज़ादी के ४० वर्ष बीतने के साथ अपने लोकतंत्र के लिये लज्जा के उदाहरण भी प्रस्तुत किये। यदि आज कम्युनिज़्म के बजाय लोकतन्त्र का तारा धीरे-धीरे चमकता दिखाई देता है तो क्या उसकी प्रेरणा के मूल में भारतीय लोकतंत्र नहीं है? इसी लिये जहां अपने लोकतंत्र पर गर्व होता है वहां साथ ही साथ इस चुनावीय महाभारत में जिस प्रकार की धांधली और रक्तपात हुआ है वह कम लज्जा की बात नहीं है। कम से कम २०० आदमियों की चुनावों के दौरान हत्या हुई है और डेढ़ हज़ार मतदान-केंद्रों पर धांधली के परिणाम-स्वरूप पुनः मतदान की घोषणा हुई। इस प्रकार की धांधली में जब सत्ता-पक्ष की प्रमुखता हो तो सिर और शर्म से झुक जाता है।

कोढ़ में खाज की तरह एक नया पहलू यह भी कि अब राजनीति में माफिया-गिरोह हावी होता जा रहा है। पहले घोषित अपराधियों को राजनीति के निकट तक आने की हिम्मत नहीं होती थी, पर अब सत्ता-पक्ष और विपक्ष दोनों ही उन अपराधियों को प्रश्रय देने में संकोच नहीं करते। राजनीति का यह अपराधीकरण सबसे अधिक चिन्ता का विषय है।

पिछले लेख में हमने लोकतंत्र पर पूंजीतंत्र के हावी होने की बात भी कही थी, और यह भी कहा था कि देश में जितनी समृद्धि आई है, उसकी सारी चमक-धमक केवल देश की एक चौथाई जनता तक पहुंच पाई है, जबकि तीन चौथाई जनता हाशिये पर खड़ी 'टुक टुक दीदम् दम न कसीदम्' की स्थिति में पड़ी है। ऐसा लगता है कि ये एक चौथाई लोग शीशे के महल में खड़े हैं और अन्दर खड़े-खड़े नाच रहे हैं, गा रहे हैं, कूद रहे हैं, मस्ती मार रहे हैं और खुशी के मारे फूले जा रहे हैं। तीन चौथाई लोग शीशे की दीवारों के बाहर खड़े-खड़े यह सब तमाशा देख रहे हैं। शायद महल के अन्दर से कभी-कभी फेंकी गई जूठन, उनके उतरे हुए कपड़े और उपभोग से बची हुई सामग्री भी बाहर फेंक दी जाती है, तो बाहर खड़े तीन चौथाई लोगों में से कुछ लोग उस जूठन को पाकर ही अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। यह भी हो सकता है कि उस जूठन पर कुछ लोग कुत्तों की तरह आपस में लड़ते हों। परन्तु जूठन तो जूठन है। मनस्वी व्यक्ति भूखों मरना मंजूर करेगा, परन्तु जूठन की ओर दृष्टिपात नहीं करेगा। भारतीय लोक में, जिस पर लोकतंत्र टिका है, अधिकांश वर्ग में यह मानसिकता कायम है। उसको

खैरात नहीं चाहिए, उसको अपना हक चाहिए क्योंकि लोकतंत्र का असली वाहन तो यही है।

वह जमाना चला गया जब अशिक्षा के कारण लोग अपने जीवन की वर्तमान दुर्दशा को अपने पूर्व-जन्म के कर्मों का फल मानकर सन्तोष कर लेते थे या अपने भाग्य को कोस कर रह जाते थे। पूर्व-जन्म के कर्मों का फल सिद्धांत-रूप से गलत नहीं है, परन्तु समाजकृत और शासनकृत अव्यवस्था का दोष पूर्व-जन्म के कर्मों को देना सरासर गलत है और यह चोरी और सीनाजोरी है। यह ध्यान रखना चाहिए कि व्यवस्था का असली मूल प्रशासन है। प्रशासन की कुर्सियों पर बैठे लोग तो ऐश करें और प्रशासित जनता उनकी ओर फटी-फटी आंखों से देखती रहे। यह विषम स्थिति अस्वाभाविक है और जिन लोगों ने यह स्थिति पैदा की है, वह किसी भी तरह अपने अपराधों की जवाबदेही से बच नहीं सकते। अगर पूर्व-जन्म के कर्मों का फल मिलने का सिद्धांत सही है, तो इस जन्म के कर्मों का फल अगले जन्म में मिलने का सिद्धांत भी उतना ही सही है। ये आज के अपराधी कल कहां जायेंगे? ऐसी स्थितियां ही तो क्रान्तियों को जन्म देती हैं।

जब विदेशी शासन था तो हम देश की दुर्गति का सारा दोष उन विदेशी शासकों को दे देते थे। पर अब तो स्वदेशी शासक हैं। अब दोष इनको नहीं तो किसको दोगे? इतना प्रचण्ड भ्रष्टाचार, भयंकर मुद्रा-स्फीति, बेरोजगारी और कमर-तोड़ विदेशी कर्ज का बोझ क्या किसी और की देन हैं? फिर जिस प्रकार नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है, ऊपर से नीचे तक, आखिर उसका जिम्मेवार कौन है? जब समग्र क्रान्ति के सूत्रधार श्री जय प्रकाश नारायण ने भ्रष्टाचार के मुद्दे को उठाया था, तब सरकार की ओर से कहा गया था कि वह केवल निचले स्तर पर है, ऊपर के स्तर पर नहीं है। और श्री जय प्रकाश नारायण का कहना था कि पानी हमेशा ऊपर से नीचे की ओर बहता है। इसलिये यदि ऊपर भ्रष्टाचार न हो तो उसका पानी बहकर नीचे कहां से जाएगा? वह प्रश्न आज भी समाप्त नहीं हुआ है और यदि आज भी उसका उत्तर वही है तो हमारी ओर से उसका प्रत्युत्तर भी वही है क्योंकि—

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत् तदेवेतरो जनः।

—बड़े लोग जो करते हैं, छोटे लोग भी देखा-देखी वही सब कुछ करते हैं।

लोकतंत्र के जिस पहलू पर लज्जा से सिर झुका जाता है, उसकी चर्चा के बाद अब कुछ गर्व की बात भी करें। सच तो यह है कि बड़े लोगों के प्रति उक्त अनास्था ही हमें छोटे लोगों के अन्तःकरण में छिपी प्रसुप्त आस्था की ओर ले जाती है। हमारे लोकतंत्र का आधार वे बड़े लोग नहीं हैं, बल्कि वे तीन चौथाई लोग हैं जो इस लोकतंत्र में सबसे अधिक सबल होते हुए भी केवल अबल बनकर रह गये

हैं। पांच साल में एक बार उनकी वाणी को बल मिलता है और अपनी उसी मूकवाणी के माध्यम से वे देश का तख्ता पलट देते हैं। तब लगता है कि असली किंग—मेकर तो वही हैं। पर ये “किंग” भी कैसे हैं जो गद्दी संभालते ही अपने “मेकर” को भूल जाते हैं। तब फिर पांच साल के बाद “किंग—मेकर” का नम्बर आता है, तो वह फिर तख्ता पलटता है और अपनी हैसियत को पहचान कर गर्व से सीना तानकर खड़ा होता है। यही तो लोकतंत्र की जान है। तानाशाही में सिवाय तानाशाह के किसी को अपनी छाती फुलाने की छूट नहीं होती। यह केवल लोकतंत्र ही है जिसमें समय—समय पर ऐसा अवसर आता रहता है कि लोग अपनी इच्छा के अनुसार तंत्र को बदलने की हिम्मत कर सकते हैं। यहीं से गर्व की अनुभूति प्रारम्भ होती है। इस बार लोगों ने फिर वही कर दिखाया है जिसके कारण लोकतंत्र में आस्था और प्रबल होती है।

हाल के घटना—चक्र को देखें तो उत्तर भारत में जिस तरह कांग्रेस का सफाया हुआ है और साथ ही दक्षिण भारत में प्रादेशिक दलों का सफाया हुआ है, उससे जनता की इसी मनोवृत्ति का पता लगता है कि वह वर्तमान प्रशासकों से सन्तुष्ट नहीं थी। वह उन्हें बदलना चाहती थी और आखिर उसने बदल कर दिखा दिया। परन्तु अब जो नये लोग सत्ता में आयेंगे उनके लिए भी हम लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव को दी गई वह चेतावनी दोहराना चाहते हैं—

न च संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।

समये तिष्ठ सुग्रीव मा बाली पथमन्वगाः।।

—“हे सुग्रीव! राम के तरकस में अभी भी वह बाण मौजूद है जिससे बाली मारा गया था। वह रास्ता अभी बन्द नहीं हुआ है। अतः तेरे लिये उचित यही है कि तू अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर और बाली के रास्ते पर मत चल।” यही बात हम शासन की कुर्सियों पर बैठने वाले नवागन्तुक नेताओं से कहना चाहते हैं। लोगों के हाथ में अभी भी वह ब्रह्मास्त्र मौजूद है। यदि तुमने भी अपने कारनामों से वैसा ही उदाहरण उपस्थित किया तो ब्रह्मास्त्र तुम्हें भी नहीं छोड़ेगा। बहुत हो चुका। जनता पार्टी के राज में उसके बिखराव को देखते हुए भी इस बार तुम्हें वोट दिया है तो कुछ सोच समझ कर। यदि बारह वर्ष के इस वनवास के बाद तुम्हें गद्दी साँपी है तो याद रखना कि यदि इस बार तुमने जनता को निराश किया तो वह तुमको केवल एक वर्ष के लिये नहीं किन्तु सदा—सदा के लिए अज्ञातवास में भेजे बिना नहीं मानेगी। संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र के इसी पहलू पर हमें गर्व है।

सुभाषित

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्यकृतस्य च॥
आत्मसाक्षी भवेन्निर्त्यमात्मनस्तु शुभाशुभे।
मनसा कर्मणा वाचा न च कांक्षेत पातकम्॥

आत्मा ही अपना बन्धु है, आत्मा ही अपना शत्रु है तथा आत्मा ही अपने कर्म और अकर्म का साक्षी है। अपने शुभ और अशुभ कर्म में सदा अपने आत्मा को ही साक्षी समझना चाहिए और मन, वाणी तथा कर्म से कभी पाप की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

क्या संकट टल गया?

उधर कश्मीर की हालत दिन-प्रतिदिन गम्भीर से गम्भीर-तर होती जा रही है, स्थिति पर नियन्त्रण के आसार दूर तक नज़र नहीं आते। सरकार पूरी तरह अपनी वैशाखी संभाल भी नहीं पाई कि उपप्रधानमंत्री देवीलाल ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देकर सबको चकित कर दिया। सबको १६७७ याद आने लगा। उस समय जिस त्रासदी से देश को गुजरना पड़ा था, क्या वही राजनीति का धिनीना खेल दुबारा खेला जा रहा है और क्या वही त्रासदी दुहराई जाएगी? लोगों ने तरह-तरह की भविष्यवाणियां करनी शुरू कर दी हैं। जुम्मा-जुम्मा सात दिन भी नहीं हुए और पूत के पांव पालने में दिखने लगे।

क्या सर्वदलीय शिष्टमंडल की कश्मीर-यात्रा के दौरान देवीलाल का राजीव के कंधे पर हाथ और राजीव की राज्यपाल जगमोहन से केवल इसलिए झड़प कि 'मेरे.. हमारे देश के उपप्रधानमंत्री को 'रिसीव' करने वे हवाई अड्डे क्यों नहीं पहुंचे, और उपप्रधानमंत्री को बातचीत के समय दाईं ओर की कुर्सी पर बैठाने के बजाय बाईं ओर की कुर्सी पर बिठाकर 'प्रोटोकॉल' की क्यों अवहेलना की?—ऐसी कुटिल राजनीति का यही परिणाम होना था? देश की जनता विधानसभाओं के चुनावों में पुनः जनता दल और राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार के प्रति विश्वास प्रकट करने की आत्ममुग्धता से अभी उबर भी नहीं पाई थी कि जैसे अनब्र वज्रपात हो गया।

पर इसे 'अनब्र' भी क्यों कहा जाए? बादल तो विधान-सभाओं के चुनावों में ही छा गए थे और मेहम के घटना-चक्र ने उसे घटाटोप का रूप दे दिया था। पर वे बादल स्थानीय परिवेश से निकल कर इस तरह राष्ट्रीय त्रासदी का रूप

धारण कर लेंगे, यह किसी को कल्पना नहीं थी। फिर भी हम इस घटना को एक भिन्न प्रकार की राष्ट्रीय एकता के रूप में देखते हैं। जब पांव में कोई कांटा गहरा लग जाए तो आंखों से आंसू निकल ही पड़ते हैं। कहां पांव, कहां आंखें! अलग-अलग प्रेदश, आंख और पांव कितनी ही दूर क्यों न हों, पर हैं तो एक ही शरीर के अंग न! व्यक्ति के बिना समष्टि भी कहां रहेगा? दोनों परस्पर जुड़े हैं न! अचानक एक शेर याद आ गया है। पाठक अनुमति दें तो लिख ही दें—

बला से पांव गर छिद गये, किसी के काम तो आये।

न जाने खुश्क-लब कांटे, पड़े कब से बियांबां में।

(खुश्क-लब=सूखे होंठों वाले)

श्री देवीलाल का त्यागपत्र भले ही वैयक्तिक रागद्वेष से प्रेरित हो, नेहरू-वंश का विरोध करते-करते भले ही अपने वंश को प्रतिष्ठित करने का पैतरा हो, भले ही राजनीति में अपने प्रतिद्वन्दी और उसी प्रकार वंशवाद के विरोधी चौधरी चरण सिंह के वंशवाद को सार्थक करने वाले अजीतसिंह को शतरंज में मात देने की चाल हो, पर अपने त्यागपत्र को उन्होंने ग्राम और शहर, किसान और पूंजीपति, अमीर और गरीब के बीच होने वाले संघर्ष में अपनी ग्राम-किसान-गरीब-पक्षधरता का प्रतीक बनाया है। इसमें एक फिलासफर के इस कथन की गन्ध आती है, "परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि इसलिए दी है कि वह अपने गलत काम को भी सही सिद्ध कर सके।" वकील की बुद्धि और फीस तो होती ही इसीलिए है। और वकील? कौन सा ऐसा राजनीतिज्ञ है, जो अपना वकील खुद नहीं होता!

पर हम व्यंग्य की भाषा क्यों बोलें? (होली तो बीत ही चुकी है!) हम मान लेते हैं कि हमारे उपप्रधानमंत्री के मन में केवल किसानों और गरीबों का हित ही प्रमुख था, और इसीलिए पूंजीपतियों, ने-जो सौभाग्यवश इस देश में बड़े अखबार-पति भी हैं, अपने अखबारों के माध्यम से देवीलाल और उनके बेटे की छवि पर कालिख पोतने का आन्दोलन चलाया। पर क्या राजनीतिज्ञ को इतनी पतली चमड़ी वाला होने से काम चलेगा? यदि पूंजीपतियों ने उनके विरुद्ध आन्दोलन चलाया था, तो उसका कारगर विरोध वे उपप्रधानमंत्री रहते जितनी अच्छी तरह कर सकते थे, उतनी अच्छी तरह उस पद को छोड़ कर नहीं।

पर हम एक और बात की ओर भी ध्यान खींचना चाहते हैं। प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने कांग्रेस से नाता तोड़ते हुए कहा था कि प्रश्न ईमानदारी का है। क्या अब देवीलाल अपने प्रधानमंत्री से यह कहेंगे कि प्रश्न बेईमानी का है? क्या कांग्रेसदल का भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए जनतादल को भ्रष्टाचार का पट्टा दे दिया जाए? हमने राजनीतिज्ञों के लिए चमड़ी मोटी होने की बात कही

है। पर चमड़ी मोटी हो या पतली, चमड़ी से ऊपर दमड़ी नहीं होती, नैतिकता होती है और उस नैतिकता का सम्बन्ध चमड़ी से नहीं होता, आदमी के अपने अन्तःकरण से होता है। हम तो एक कदम आगे बढ़ कर यह भी कहेंगे कि यह अन्तःकरण केवल अपना नहीं, मानव मात्र का होता है। यदि मानव मात्र के अन्तःकरण में नैतिकता की समान वृत्ति न होती, तो वह भी एक साम्प्रदायिक मनोवृत्ति बन कर रह जाती। 'सत्यमेव जयते' केवल शास्त्रीय वाक्य नहीं है, यह मानवीय अन्तःकरण का स्वयंसिद्ध-सिद्धांत है।

यहीं से आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। धर्म के लक्षणों में जो कहा गया है—'स्वस्य च प्रियमात्मनः' या 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' या 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'—क्या उसका भी यही अर्थ नहीं है? हमें विश्वास करना चाहिए कि राजनीतिज्ञ लोग यदि आत्मनिरीक्षण करें, तो धृतराष्ट्र की तरह पुत्रमोह में पड़ कर महाभारत की भूमिका तैयार नहीं करेंगे। वह आत्मघाती मार्ग है।

अब तो प्रधानमंत्री की सदाशयता से, अन्य राजनीतिज्ञों की भागदौड़ से, स्वयं देवीलाल ने समझदारी से अपना त्यागपत्र वापिस ले ही लिया है, इसलिए समझना चाहिए कि आसन्न-संकट टल गया है।

पर क्या संकट सचमुच टल गया है? उत्तर में वाक्य से पहले 'फिलहाल' शब्द लगाना पड़ेगा। हां, फिलहाल संकट टल गया है। पर जनता के मन में संशय की एक लकीर छोड़ गया है, जो आसानी से मिटने वाली नहीं है। जो लोग जनता दल और राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार को विफल करने का नाटक खेलना चाहते थे, उनको यही अभीष्ट रहा होगा। वे इसी से सन्तुष्ट हो सकते हैं।

पर इस दृश्य के बाद मंच पर नाटक का पर्दा गिरा देना ही बेहतर है।

२५ मार्च १९६०



"उदारता, पर-दुःख-कालरता, सर्वपरिचित-सहायकता, राष्ट्र-समर्पण आदि सभी गुण पण्डित जी में हैं। पर उनमें एक सबसे बड़ा दुर्गुण भी है। वह है उनकी 'अति-सज्जनता'। उन्हें इसका दण्ड जीवन में बारम्बार मिला है। फिर भी वे अपनी इस बुरी आदत से बाज़ नहीं आते। वे सच्चे अर्थों में सर्वशक्तिभूता नाथः हैं। उनकी जय हो!"

-गोविन्दप्रसाद केजरीवाल

साप्ताहिक हिन्दुस्तान, एम०पी०

२८, मौर्य ऐन्क्लेव, दिल्ली-११००३४

सुभाषित

भयार्तानां भयात् त्राता दीनानुग्रह-कारणात् ।

कार्याकार्य-विशेषज्ञो नित्यं राष्ट्रहिते रतः ।।

जायतां ब्रह्मवर्चस्वी राष्ट्रे वै ब्राह्मणः शुचिः ।

महारथश्च राजन्यः एष्टव्यः शत्रुतापनः ।।

— महाभारत, अ० १४५

शासक को चाहिए कि भयातुर मनुष्यों की भय से रक्षा करे, दीन-दुखियों पर अनुग्रह करे, कर्तव्य और अकर्तव्य को विशेष-रूप से समझे और सदा राष्ट्रहित में संलग्न रहे। सबको यह कामना करनी चाहिए कि राष्ट्र में पवित्र आचरण वाले, ब्रह्मतेज धारण करने वाले विद्वान् उत्पन्न हों और शत्रुओं को पराजित करने वाले महारथी बलवान् उत्पन्न हों।

मण्डल-आयोग का कमण्डल

पिछले दिनों डॉ० भीमराव अम्बेडकर को उनके दिवंगत होने के इतने वर्षों के पश्चात् भारत सरकार के सर्वोच्च सम्मान 'भारत-रत्न' से सुभूषित किया गया। जो सम्मान उनके जीवन-काल में ही दिया जाना चाहिए था, वह तो इतने वर्षों बाद मरणोपरान्त पुरस्कार के रूप में दिया गया है। इसे 'देर आयद दुरस्त आयद' कहकर सन्तोष किया जा सकता है। परन्तु यहां उस बुढ़िया की कहानी याद आती है जो रास्ते में अपनी गठरी लिए थक कर बैठ गई थी और एक घुड़सवार को देखकर उसे रोककर उसने प्रार्थना की थी कि "भैया! इस गठरी का बोझ मुझसे नहीं उठाया जाता, इसलिए कृपा करके तुम यदि मुझे अमुक गांव तक पहुंचा दो तो तुम्हारा बड़ा उपकार मानूंगी।" घुड़सवार जल्दी में था, बुढ़ियों की प्रार्थना पर बिना ध्यान दिये आगे बढ़ गया। कुछ दूर जाने के बाद उसे ध्यान आया कि बुढ़िया की पोटली में पता नहीं क्या हो, शायद उसकी जन्म-भर की कमाई या कुछ जेवर वगैरह हों, तो इस प्रकार वह अनायास मेरे हाथ लग जाते। बुढ़िया को रास्ते में कहीं धक्का दे दूंगा और गठरी मेरे पास रह जाएगी। यह सोचकर वह वापस मुड़ा और बुढ़िया के पास आकर बोला—"माई! मुझे तेरे ऊपर दया आ गई। गठरी लेकर पीछे बैठ जा, मैं तुझे गांव तक पहुंचा दूंगा।" बुढ़िया बोली—"बस भैया! इतना ही बहुत है। अब जिस तरह तुम कुछ समझ गये हो, उसी प्रकार मैं भी कुछ समझ गई हूँ। तुम अपना रास्ता लो।"

संसद-भवन के बाहर एक ओर पंडित मोती लाल नेहरू और दूसरी ओर डॉ॰ अम्बेडकर की बड़ी भव्य आदमकद मूर्तियां लगी हुई हैं। दिवंगत हो जाने के इतने वर्षों पश्चात् 'भारत-रत्न' का सम्मान देने में भी कोई अनौचित्य नहीं, परन्तु मन में एक शंका अवश्य होती है कि अब जो बात सरकार की समझ में आई है, उसके पीछे जरूर कोई न कोई रहस्य है। वह रहस्य भी कोई लुका-छिपा नहीं है, जग-जाहिर है। अल्पमत की सरकार अपने स्थायित्व के लिए अल्पसंख्यकों के आधार पर ही अपने चिरजीवी होने की आशा लगाये है। इसलिए उसका हर कदम वोट-बैंक की खातिर उठाया गया लगता है। इस वोट-बैंक की अभिलाषा ने राजा साहब (प्रधानमंत्री) को इमाम बुखारी के दर पर सरे-खम करने को मजबूर किया, और उसी वोट-बैंक की खातिर जामामस्जिद के सुधार के लिए पचास लाख रुपये की राशि दी गई। उसी वोट-बैंक की खातिर हिन्दुओं और सरकार को गालियां देने वाले ओबेदुल्ला आजमी को राज्य-सभा में और उसी के एक साथी को उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् में भेजा गया। वोट-बैंक की खातिर सरकार को और न जाने क्या-क्या नटबाजी करनी पड़ेगी?

इस अल्पसंख्यकपरस्ती का परिणाम क्या हुआ है, यह पिछले दिनों देश के विभिन्न स्थानों पर हुए भीषण दंगों से पता लगता है। अहमदाबाद, बड़ौदा, कानपुर और उससे कुछ दिन पहले जयपुर तथा बदायूं आदि शहरों में भीषण रक्तपात किस बात का सूचक है? सूरत में सिनेमा के टिकट को लेकर एक हिन्दू और एक मुसलमान में कहा-सुनी हो गई, कानपुर में एक हिन्दू और एक मुसलमान साईकिल-सवार आपस में टकरा गये, कानपुर में एक जुलूस में कुछ नारे लगे, और बदायूं में एक कालेज के विद्यार्थियों ने हिन्दी के समर्थन में प्रदर्शन किया तो उन पर पत्थर फेंके गये। इस प्रकार की छोटी-छोटी घटनाओं से ये शहर उपद्रवों की भीषण ज्वाला में घिर गये। इस देश की जनता इतनी असहिष्णु तो कभी नहीं थी कि इतनी छोटी-छोटी घटनाओं से वहशत पर उतर आती। ऐसा लगता है कि सरकार की अल्पसंख्यक-परस्ती ने अल्पसंख्यकों के हौसले ज़रूरत से ज्यादा बढ़ा दिए हैं। इन उपद्रवों में कहीं भी ऐसा नहीं लगा कि ये पूर्व-नियोजित न हों। कई महीनों से, पाकिस्तान की ओर से पाक-विघटनकारी तत्त्व देश के विभिन्न स्थानों पर हथियारों के ज़खीरे जमा करा रहे हैं और जरा सा बहाना मिलने पर वे अपनी पशुता के प्रदर्शन पर उतर आते हैं।

कांशीराम के नेतृत्व में जो बहुजन समाज पार्टी उभरी है, उसने मुस्लिम अल्पसंख्यकों के साथ हरिजनों तथा अन्य पिछड़े वर्गों को मिलाकर सवर्णों के विरुद्ध एक नया अभियान प्रारम्भ किया है। इस बहुजन समाज पार्टी को जिस प्रकार ईसाई पादरियों का और मुस्लिम तस्कराधीशों का सहयोग प्राप्त है, वह

देखकर आश्चर्य होता है। वे अपनी विघटन-प्रियता को छिपाने के लिए पिछड़े वर्गों का सहारा लेते हैं और उनको सरकार के तथा समस्त सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए भड़काते हैं। अब सरकार को क्योंकि वोट चाहिए, इसलिए वह इन विषैले संपोलों को तरह-तरह से दूध पिलाने के सामान जुटाती हैं। पिछड़े वर्गों की उन्नति के जितने भी उपाय किये जाएं, उनमें किसी को कोई आपत्ति नहीं है। हमारी आपत्ति उस तरीके और मनोवृत्ति पर है जिसके अधीन ये काम किये जा रहे हैं। इन सुधारों की घोषणा के पीछे पिछड़े वर्गों की भलाई की भावना के बजाय वोट-बैंक की बढ़ोतरी की चिन्ता ही अधिक है। यह परार्थ नहीं, स्वार्थ है।

दिल्ली की सड़कों पर और पुलों की दीवारों पर बहुजन समाज पार्टी की ओर से नारे लिखे गये हैं—“मण्डल-आयोग की सिफारिशें पूरी करो, वरना गद्दी छोड़ दो।” मण्डल-आयोग की रिपोर्ट क्या है, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है, क्योंकि वह अभी तक लोकसभा में भी पेश नहीं की गई है। परन्तु उस रिपोर्ट के सम्बन्ध में जो कुछ उड़ती अफवाहें सामने आ रही हैं, वे भी कम चिन्ताजनक नहीं हैं। हमें विदित हुआ है कि इस मण्डल के कमण्डल के जो छीटें बाहर उद्यट कर आये हैं, उनमें से एक यह भी है कि जो हरिजन या पिछड़े वर्गों के लोग धर्मान्तरण करके ईसाई या मुसलमान बन गये हैं, उनको भी वही सब रियायतें और आरक्षण-सम्बन्धी सुविधायें जारी रहनी चाहिए जो उनके हिन्दू रहने पर मिलती थीं। पिछली सरकार ने मीनाक्षीपुरम् काण्ड के बाद, आर्य समाज के द्वारा बारम्बार मांग करने पर यह व्यवस्था अपनाई थी कि धर्मान्तरित हरिजनों को वे सुविधाएं नहीं दी जायेंगी जो उनको हिन्दू रहने पर मिलती हैं। उसका कारण बहुत स्पष्ट था। ईसाईयत या इस्लाम को ग्रहण करने वाले अधिकांश लोग आर्थिक प्रलोभन के कारण धर्मान्तरण स्वीकार करते हैं। कुछ लोग सवर्ण हिन्दुओं की छुआछूत की ज्यादतियों से परेशान होकर भी धर्मान्तरण कर सकते हैं, इससे हम इंकार नहीं करते। क्योंकि अभी तक हिन्दू समाज में भी पुरी के शंकराचार्य जैसे छुआछूत के समर्थक और उनके अनुयायियों की संख्या नगण्य नहीं है। परन्तु इस्लाम या ईसाईयत का यह दावा है कि उनके मत में प्रविष्ट होते ही हर एक व्यक्ति का सामाजिक दर्जा एक समान हो जाता है, इसलिए सवर्णों के उत्पीड़न के मुआवजे के तौर पर दी जाने वाली रियायतें धर्मान्तरित हरिजनों को देने में कोई तुक नहीं है। अगर मण्डल-आयोग की रिपोर्ट में उक्त सिफारिश की गई है और वर्तमान सरकार उसे मान लेती है तो यह एक तरह से ईसाईयत और इस्लाम को बढ़ावा देना होगा। इसका अन्तिम परिणाम अन्त में केवल हिन्दू-समाज को ही नहीं, बल्कि सारे देश को भोगना पड़ेगा।

स्वस्थ शरीर की क्या निशानी है? यही न कि शरीर का प्रत्येक अंग स्वस्थ हो, नीरोग हो और पुष्ट हो। एक भी अंग के कमजोर या रोगयुक्त होने पर शरीर को स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। यही बात राष्ट्र के स्वास्थ्य के लिए भी आवश्यक है। राष्ट्र के प्रत्येक अंग को रोगमुक्त और परिपुष्ट करके ही हम स्वस्थ राष्ट्र की कल्पना को साकार रूप दे सकते हैं। बहुसंख्यकों की उपेक्षा करके केवल अल्पसंख्यकों को तरजीह देकर आप उनके वोट तो प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु राष्ट्र के स्वास्थ्य में सुधार नहीं कर सकते। आजकल शरीर के एक-एक अंग के विशेषज्ञ डाक्टरों की प्रेक्टिस खूब चलती है, परन्तु उससे शरीर का समन्वित विकास नहीं होता। मण्डल-आयोग की रिपोर्ट भी राष्ट्र के केवल एक अंग के स्वास्थ्य की चिन्ता भले ही करती हो, लेकिन अन्य अंगों के कमजोर होने की उसे कोई चिन्ता नहीं है। यह तो चिकित्सा की कोई अच्छी पद्धति नहीं है। हमें सम्पूर्ण राष्ट्र को स्वस्थ, समृद्ध और सबल बनाना है। अंग-अंग के विशेषज्ञ डाक्टर तो राष्ट्र को कभी रोगशैया से उठने ही नहीं देंगे।

६ मई १९६०



उद्भट विद्वान्, लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार, स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष विचारक, प्रतिभा-सम्पन्न तार्किक पत्रकार, वैदिक मनीषी, गहन-गम्भीर साहित्याराधक, सुर-भारती के अनन्योपासक, भारतीय संस्कृति के मुखर पोषक, प्रख्यात शिक्षाविद्, ओजस्वी सत्योपदेष्टा, धीर-गम्भीर, सहज-सरल, शान्त-प्रशान्त, मां सरस्वती के चरणारविन्द के निष्ठावान् सेवक, निष्कपट, निश्छल, निस्पृह आदि अनेकानेक गुणों से विभूषित थे पं० क्षितीश वेदालंकार।

वे ऐसे मूक साहित्यकार और पत्रकार रहे, जो झूठी वाह-वाही के जाल में नहीं फंसे। अपनी नैतिक मान्यताओं पर दृढ़ रहते हुए उन्होंने बाह्य आडम्बरों को कभी महत्त्व नहीं दिया। उनको लगता है, किसी व्यक्ति को प्रशंसा के चौराहे पर लाकर खड़ा करना, उसको सार्वजनिक रूप से मृत्युदण्ड सुनाना है।

पदों को आपदा मान, तजा न कभी स्वाभिमान।

लेखनी झुकी नहीं, ज्ञान-ज्योति बुझी नहीं।

सर्वदा जो रहे समान, करें सदा उनका सम्मान।।

-नरेन्द्रकुमार 'आलोक'

११६ गौतम नगर, नई दिल्ली

सुभाषित

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंसा दयालुरपि धार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुर-वित्तधनागमा च
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा।।

— भर्तृहरि

सच्ची, झूठी अरु कठोर तो, प्रियवादिनी कभी अपार।
हिंसामयी, दयालु कभी तो, लोभी, तो पुनि कभी उदार।।
कभी लुटाने वाली बहुधन, कभी धनागम—युक्त अनूप।
वेश्या के सम राजनीति-यह धारण करती है बहुरूप।।

—गोपालदास गुप्त

मक्खन की हांडी और बिल्ली

आखिर चन्द्रशेखर प्रधानमंत्री बन ही गए और देवीलाल पुनः उपप्रधानमंत्री। आखिर बिल्ली के भागों छीका टूटा। बिल्ली कब से घात लगाए बैठी थी कि कभी तो छीका टूटेगा ही। आखिर वह टूटा। पर फिलहाल मक्खन की हांडी सीधी बिल्ली के हाथ नहीं आई। बीच में कुछ और छुटभैये भी बैठे थे, जिन्हें लोमड़ी की उपमा दी जा सकती है, क्योंकि वे लोमड़ी से कम काइयां नहीं हैं। परन्तु जानकार लोग जानते हैं कि अन्त में हांडी बिल्ली के ही हाथ में आनी है। बीच की लोमड़ियों को यदि मक्खन मिला है, तो वह होठों पर लगाने के लिए, चिरकाल तक पूरा स्वाद लेने के लिए नहीं। उस चिरकाल की अवधि क्या होगी, यह भविष्यवाणी कोई नहीं कर सकता, परन्तु घटनाचक्र का प्रत्येक जागरूक अध्येता यह अवश्य कह सकता है कि वह चिरकाल कुछ मास से अधिक का नहीं होगा।

इसका कारण? कारण यह कि ५०० से अधिक सांसदों के सदन में जनता दल के केवल १४३ सदस्यों के बूते पर यदि विश्वनाथ प्रताप सिंह अपनी अल्पसंख्यक सरकार भाजपा और वामपंथियों की बैसाखी के आधार पर ११ महीने से अधिक नहीं चला सके, तो जनता दल से टूटे केवल ५६ सांसदों के बल पर श्री चन्द्रशेखर कांग्रेस की बड़ी बैसाखी और अन्य छोटे-मोटे दलों की छोटी-छोटी बैसाखियों के बल पर अपनी सरकार कब तक चला सकेंगे? अभी बिल्ली अपने

नाखून पैना रही है, उचित अवसर आते ही वह अपनी बैसाखी हटा लेगी और तब चन्द्रशेखर की सरकार धड़ाम से धराशायी हो जाएगी। चन्द्र चाहे स्वयं भगवान् चन्द्रशेखर शिव के मस्तक पर शोभायनमान हो, चाहे अपने आपको देवपुरुष समझने वाले भौंडसी आश्रम के बाबा के मस्तक पर, परन्तु कलंक तो चन्द्रमा में जन्म जात है।

वी० पी० सिंह ने राष्ट्र के नाम अपने प्रधानमंत्रित्व के विदाई संदेश में कहा है कि हम कुछ सिद्धान्तों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, इस संघर्ष में सरकारें आएँ या जायें उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, हमारा संघर्ष तो लगातार कायम रहेगा। उन्होंने गर्व से कहा—“हम मोर्चा हारे हैं, लड़ाई नहीं हारे, इसलिए हम सिर ऊँचा करके जा रहे हैं।” अफसोस इतना ही है कि अपने ग्यारह महीने के शासन को वे अपनी गर्वोक्ति को प्रमाणित करने के लिए पेश नहीं कर सकते। हाँ, कदम—कदम पर उनकी निश्चयशून्यता, दिशा—हीनता और देवीलाल के शब्दों में मेरुदण्ड—हीनता अवश्य प्रकट होती रही। वे हमेशा आम सहमति की रट लगाते रहे, पर आम सहमति किस बात पर—यह कभी स्पष्ट नहीं हो पाया। आखिर सरकार की ओर से पंजाब, कश्मीर, असम, मंहगाई और रामजन्मभूमि—विवाद पर कोई तो योजना पेश की गई होती, जिस पर वे आम सहमति प्राप्त करना चाहते थे। पर वैसा कुछ दिखाई नहीं दिया। वे शायद समय को सबसे बड़ा चिकित्सक मानते रहे और समझते रहे कि वक्त अपने आप सब समस्याओं का समाधान कर देगा। वे यह नहीं समझ पाये कि “राजा कालस्य कारणम्”—काल राजा का निर्माता नहीं होता, राजा ही काल का निर्माता होता है।

विश्वनाथ प्रताप सिंह जिसे सिद्धान्तों के लिए संघर्ष की बात कहते हैं, उसके गुणावगुण की चर्चा करने का यहां स्थान नहीं है। पर जिन दो बातों के लिए वे अपने आपको ‘शहीद’ का जामा पहनाना चाहते हैं वे दोनों बातें हैं—मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू करना और तथाकथित बाबरी मस्जिद की रक्षा के निहत्थे कार—सेवकों को गोलियों से भून डालना। अपने पहले निर्णय से उन्होंने देश को जाति—युद्ध की ओर धकेल दिया और दूसरे निर्णय से साम्प्रदायिक युद्ध की ओर। क्या देश को अराजकता के गर्त में ढकेलने के लिए कुछ और भी चाहिए? इसलिए लोग ठीक ही कहते हैं—आत्मदाह करने वाले छात्रों और गोलियों से मरने वाले कार—सेवकों के आंसुओं के तीव्र प्रवाह ने विश्वनाथ प्रताप सिंह को डुबो दिया।

जो हो, पिछले दिनों की इस उठापटक में यदि कोई सबसे अधिक आहत हुआ है, तो वह व्यक्ति नहीं, पूरा राष्ट्र है। राजनीति में नैतिकता का इतना भयंकर पतन अब तक कभी दिखाई नहीं दिया था, जितना इस बार में दिखाई दिया। वह तो गनीमत है कि पाठक इतने समझदार हैं कि अखबार को पढ़ने के बाद उसे रद्दी

के हवाले कर देते हैं, इसलिए उन्हें याद नहीं रहता कि अमुक नेता ने कुछ दिन पहले क्या कहा था और आज क्या कह रहा है। कुछ दिन पहले क्यों, कल कही हुई बात को आज मुकर जाना या उससे सर्वथा उल्टी बात कहना राजनीतिज्ञों का स्वभाव बन गया है। ठीक है, राजनीति में दुश्मनी या दोस्ती कभी स्थायी नहीं होती, आज के दुश्मन कल दोस्त बन जाते हैं और आज के दोस्त कल दुश्मन। इसलिए राजनीति में किसी का विश्वास करना अपने आपको धोखा देना है। पर राजनीति का एक स्थायी भाव भी है—वह है घृणा, विद्वेष और स्वार्थ। आज की राजनीति के लिए यही सच है, प्रेम और मित्रता तथा समर्थन सब झूठ है। घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वा रासभरोहणम्— मित्रता का घड़ा फोड़ो, प्रेम—पट को तारतार कर दो और गधे पर चढ़ो परन्तु किसी भी तरह स्वार्थ पूरा होना चाहिए, सत्ता और कुर्सी हाथ में आनी चाहिए।

सन् १९७६ में भी एक बार ऐसा नाटक हो चुका है, अब फिर वही नाटक दुहराया जा रहा है। राजनीतिज्ञ भी कितने अन्धे होते हैं! कभी इतिहास से सबक नहीं लेते। सत्ता का प्रलोभन सामने हो तो दो कदम दूर की खाई को आंखों से ओझल कर देंगे।

इन नेताओं ने कितने झूठ बोले हैं, कितने छल—प्रपंच किए हैं, इसका ब्यौरा मत मांगिये। बस तेल देखिए, तेल की धार देखिए और देखिए बिल्ली और लोमड़ी की गतिविधियां—क्योंकि दोनों का असली उद्देश्य मक्खन की हांडी है।

१८ नवम्बर १९६०



‘प्रायः लेखनी और वाणी की ओजस्विता व्यक्ति के सहज शत्रु भी उत्पन्न कर देती है। पर क्षितीश जी से शत्रुता रखने वाला व्यक्ति मुझे आज तक नहीं मिला। वे सही अर्थों में ‘अजातशत्रु’ हैं।...उनके केस पर विचार करते हुए गुरुकुल सेनेट में कहा गया कि, ‘जो विद्यार्थी सदा अपनी कक्षा में प्रथम डिवीज़न में पास होकर, प्रायः प्रथम स्थान पाता रहा हो, उसने तो हैदराबाद की जेल—यातना की कठोर परीक्षा में शत—प्रतिशत अंक लेकर ऐसा कीर्तिमान् स्थापित किया है कि अब दुबारा परीक्षा लेना उसका अवमूल्यन—मात्र है।’ ऐसी क्रियात्मक परीक्षा आज तक किसने दी है।’

-सत्यप्रिय शास्त्री

प्राचार्य, दयानन्द बालविद्यालय, हिसार

सुभाषित

जीवन अपनी सारी शक्ति अतीत से प्राप्त नहीं करता। हर शिशु के जन्म के साथ प्रकृति सारी पिछली परम्पराएं देती है, सिर्फ उनकी छोड़कर जो मनुष्य ने अपने ऊपर लादी हैं। अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता हुआ बच्चा क्या किन्हीं परम्पराओं के अनुसार सांस लेता, सोचता, बोलता या अंगों को चलाता है? हमें इसकी खोज करनी चाहिए कि जिन परम्पराओं के लिए हम विलाप करते हैं, वे कहीं जड़ मस्तिष्कों की बैसाखियां अथवा कमजोर पड़ गयी इच्छा शक्तियां तो नहीं हैं! और यदि ऐसा है तो हमें परम्पराओं को धूनी लगाकर टिकाने का काम बन्द कर देना चाहिए। अच्छा हो कि हम अपने-अपने प्रेरणादायक जीवन छोड़ जाएं, जो भावी युगों को, हमारे अपूर्ण स्वप्नों को, अर्ध-ज्ञान और अर्ध-देवताओं को तथा हमारे मन और शरीर के विकारों को मिटाकर उच्चतर लक्ष्यों की ओर अग्रसर होने की शक्ति प्रदान करें। हमारा मुख्य संकट यह नहीं है कि अतीत की उपलब्धियां मिटती जा रही हैं; हमारा असली खतरा है प्रचार, जिसके पीछे न सद्भावना है, न श्रद्धा।

— हेलेन केलर (मुक्तद्वार से)

पूत के पांव पालने में

एक बार स्वामी अखंडानन्द जी से किसी भक्त ने पूछा— “स्वामी जी! क्या हम अपने पिछले जन्म को जान सकते हैं?” इस भक्त की बात खत्म हुई ही थी कि इतने में दूसरा भक्त पूछ बैठा— “स्वामी जी महाराज! क्या हम अपने अगले जन्म को जान सकते हैं?”

स्वामी जी ने दोनों भक्तों की ओर मुखातिब होकर जवाब दिया— “हां क्यों नहीं, हम अपने पूर्व जन्म को भी जान सकते हैं और भावी जन्म को भी जान सकते हैं।” दोनों भक्तों ने चकित होकर पूछा— “तो इसके लिए हमें कितनी तपस्या करनी पड़ेगी? योग और समाधि का कितना अभ्यास करना पड़ेगा?”

स्वामी जी ने दोनों भक्तों को और हैरानी में डालते हुए कहा— “इसके लिए किसी तपस्या या योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं है। केवल अपने इस जन्म को देख लो, उससे तुम्हें अपने पूर्व जन्म का आभास हो जायेगा, क्योंकि पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर ही तुमको वर्तमान जन्म मिला है, और वर्तमान जन्म के आधार पर ही तुम्हारे भावी जन्म का निर्धारण होगा।”

स्वामी अखंडानन्द जी के इसी उत्तर को हम दोहराना चाहते हैं कि अपने वर्तमान काल को देख लो। उससे तुम्हें पूर्व काल का और भावी काल का अनायास ज्ञान हो जायेगा। देश के लिए १९६१ का नया वर्ष कैसा रहेगा, यह पिछले वर्ष का लेखा-जोखा करने से अपने आप पता लग जायेगा। पूत के पांव पालने में ही नहीं दिखेंगे तो और कहां दिखेंगे? देश में जिस प्रकार हिंसा और अराजकता बढ़ती जा रही है, उससे ऐसा ही लगता है कि नया वर्ष भी हिंसा, आतंक और भयंकर रक्तपात का एक नया अध्याय ही इतिहास में जोड़ पायेगा। सबसे अधिक चिन्ता की बात यह है कि हमारे देश के राजनैतिक नेता राजनैतिक स्वार्थ के पीछे इतने अन्धे हो गये हैं कि समस्याओं का सही समाधान खोजने की उनकी क्षमता में हमारा विश्वास लगातार घटता जा रहा है। आन्ध्र, उड़ीसा और महाराष्ट्र में नक्सलपंथियों का जोर बढ़ता जा रहा है और स्थानीय राजनेता नक्सलियों के साथ अपने राजनैतिक समीकरण बिटाने में सचेष्ट हैं। केन्द्रीय सरकार इस विषय में मौन साधे बैठी है। जो आन्दोलन पूर्णतः हिंसा पर आश्रित होते हैं और आतंक के बूते अपनी बात मनवाना चाहते हैं, क्या वे जनता के हित में हैं?

कहावत है—'खग जाने खग ही की भाषा', जो व्यक्ति जिस भाषा को समझता है उसे उसी भाषा में समझाया जा सकता है। चाहे दक्षिण भारत के नक्सलपंथी हों, चाहे बिहार के जाति-पंथी सामंतवादी हों, चाहे असम के उग्रवादी हों, चाहे पंजाब या कश्मीर के आतंकवादी हों, इनमें से कोई भी लोकतंत्र की भाषा नहीं समझते हैं, न ही उसे जानते हैं। इनसे तो उसी भाषा में बात करनी होगी जिस भाषा में वे स्वयं पारंगत हैं। समस्या केवल हिंसा-प्रधान आतंकवाद के इन विभिन्न रूपों की ही नहीं है। उससे भी बढ़ कर समस्या यह है कि इस समय देश में जानबूझ कर साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ाया जा रहा है, जिससे हिंसा को और खुलने-खेलने का मौका मिलता है। इस विषम स्थिति से हमारे नेता जिस प्रकार निपटना चाहते हैं, उसमें उनके राजनैतिक स्वार्थों की गन्ध अधिक आती है, निष्पक्षता और दूरदर्शिता की नहीं। यदि ऐसा न होता तो क्या प्रधानमंत्री यह कहते कि सिक्खों में भय और असुरक्षा की भावना व्याप्त है, जिसे दूर करना आवश्यक है। अथवा कोई मुख्यमंत्री यह कहता कि अल्पसंख्यकों को हथियार रखने का अधिकार है, या कोई अन्य मंत्री भारत माता की तुलना डायन से करने की हिम्मत कर सकता?

विपक्षी दल यदि अपने राजनैतिक स्वार्थों के लिए साम्प्रदायिकता का सहारा लेते हैं, तो हम उनको भी क्षम्य कोटि में नहीं गिनते। परन्तु जो केन्द्र में सत्तासीन हैं वे यदि साम्प्रदायिकता का ज़हर फैलाते हैं, तो उनमें सिवाय स्वार्थ के और कौन सी कुंठा है? वे अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के विरुद्ध क्यों भड़का रहे हैं? वे क्यों गलत प्रचार कर रहे हैं कि अहिन्दुओं के साथ अन्याय और अत्याचार हो रहा

है। इस प्रकार के गलत प्रचार से जो दुष्परिणाम पैदा होंगे, उनका फल तो सारे समाज को भोगना ही पड़ेगा। इस प्रकार के प्रचार से समाज में जो मानसिकता पनप रही है उसी ने तो इस निरन्तर बढ़ती हिंसा को जन्म दिया है। एक बार समाज यदि गलत रास्ते पर चल पड़े तो उसको सही मार्ग पर लाना आसान नहीं होगा।

इसके साथ केवल पिछले साल में ही नहीं, बल्कि पिछले पूरे दशक में प्रादेशिकता और क्षेत्रवाद को लगातार बढ़ावा दिया जा रहा है और ऐतिहासिक तत्त्वों को भी गलत ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है। हैरानी की बात यह है कि देश के बुद्धिजीवियों का भी इसमें कम योगदान नहीं है। यदि इस बात पर अंकुश नहीं लगाया गया तो स्थिति और बिगड़ेगी ही, सुधरेगी नहीं। पंजाब में सिमरनजीत सिंह मान ने जिस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों और वस्तुस्थिति को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है, उसका सटीक उत्तर कौन देगा? उन्हीं कुतर्कों से प्रेरणा लेकर अब असम के उग्रवादी भी ऐतिहासिक तथ्यों को गलत ढंग से पेश करने में जुट गये हैं।

अन्त में हम, आगामी वर्ष में देश को जिस आर्थिक दुरवस्था का सामना करना पड़ेगा और जो हमको पिछले वर्षों से विरासत में प्राप्त हुई है, उसकी ओर संकेत कर देना चाहते हैं। इस समय हमारा विदेशी मुद्रा-कोष जिस धरातल में पहुंच गया है और विदेशी ऋण का बोझ जिस तरह हमारे सिर पर लद गया है, वह सचमुच भयावह स्थिति का द्योतक है। पिछले पांच वर्षों में हमने आयात का जो खुला सिलसिला चलाया, उसके कारण इस समय हमारा विदेशी ऋण ५ गुना बढ़कर २५ हजार करोड़ से १२५ करोड़ तक पहुंच गया है। इस ऋण की अदायगी के लिए हम अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाज़ार से और ऋण लेने की कोशिश कर रहे हैं। परन्तु इसके लिए जिन शर्तों में हमें बन्धना पड़ेगा, वे शर्तें हमारे लिए आर्थिक पतन का और मार्ग खोल देंगी।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष की प्रमुख शर्तों में से एक यह हो सकती है कि विदेशों से आयात पर सब प्रतिबंध हटा लिये जाएं। आयात की खुली छूट मिलते ही विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीक को बढ़ावा मिलेगा और हमारी आर्थिक आत्म-निर्भरता दिन-प्रतिदिन घटती जायगी। हमें अपने निर्यात के लिए पश्चिमी देशों के बाज़ार तब तक सुलभ नहीं होंगे, जब तक हम अपने बैंकों और बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण समाप्त करके विदेशी कम्पनियों को इस क्षेत्र में प्रवेश की खुली छूट नहीं देंगे। इस प्रकार पालने में पूत के पांव जैसे दिख रहे हैं, उससे तो नया वर्ष बहुत सुखद आश्वासन नहीं देता।

खाड़ी युद्ध और गाय

अहमदाबाद से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक "साधना" ने अपने ६ फरवरी के अंक में खाड़ी-युद्ध से भारत का क्या रिश्ता है, इस बारे में एक चौंका देने वाली जानकारी प्रदान की है। खाड़ी में जो अमेरिकन सेना मेहमान बनी हुई है, उसका स्वागत गौ-मांस द्वारा किया जाता है। बम्बई एवं अन्य स्थानों से प्रतिदिन ३००० गायों का ताजा मांस अमेरिकन सैनिकों को खाने के लिए भेजा जाता है। दिल्ली स्थित अमेरिकन राजदूत के कहने से महाराष्ट्र की कांग्रेसी सरकार द्वारा कुछ बड़े व्यापारियों को लायसेंस प्रदान किये गये हैं। इसके तहत गौ-मांस की पूर्ति की जाती है। साप्ताहिक ने यह भी लिखा है कि अमेरिका के विदेश मंत्री बेकर ने राजीव गांधी द्वारा महाराष्ट्र की कांग्रेसी सरकार को इसके लिए तैयार किया। इस रहस्य का पता तब चला जब समुद्री-तट-रक्षकों ने कुछ हांडियों में लाये जाने वाले मांस की जांच पड़ताल की तो उसमें से गाय का मांस बरामद हुआ। बेचारे चन्द्रशेखर क्या कर सकते हैं? उन्हें तो अपने पद के लिये हर प्रकार की कुर्बानी देनी पड़ती है, जिसमें तीन हजार गायों का मांस भी प्रतिदिन शामिल है।

— गुज्रफर हुसैन

कसौटी पर राष्ट्र और राष्ट्रवासी

लोकसभा भंग हो गई, आगामी 5 जून को नई संसद देखने को मिलेगी। इतने दिनों से जो ऊहापोह चल रही थी, जिसे बनाए रखने तथा जिसके निराकरण के लिए तरह-तरह के दांव-पेच खेले जा रहे थे, वे समाप्त हुए और सभी सीकिया और दबंग पहलवान अब चुनाव के मल्लयुद्ध के लिए तैयारी में जुट गये हैं।

चुनाव को चुनाव-युद्ध कहकर उसकी तुलना युद्ध से ठीक ही की गई है। जिस तरह युद्ध की तैयारी की जाती है, थल-सेना, वायुसेना और जलसेना को यथास्थान सन्नद्ध करके दूर तक मार करने वाली तोपों से लैंस टैंकों को मोर्चों पर फिट किया जाता है, दुश्मन की सेना को आगे बढ़ने से रोकने के लिए ज़मीन के नीचे छिपी हुई सुरंगें बिछाई जाती हैं, अधिक से अधिक सैनिकों के खान-पान और राशन-पानी की व्यवस्था की जाती है, एवं रसद और कुमुक के प्रवाह में बाधा न आये इसके लिए पूरी बारीकी से सावधानीपूर्वक व्यवस्था की जाती है वैसी ही सब व्यवस्था इस चुनाव-युद्ध के लिए भी तो की जाती है।

पाश्चात्य देशों के दर्शन-शास्त्र में यह बात भी निहित है कि युद्ध और प्रेम में सब कुछ जायज़ है। वही बात आजकल चुनाव-युद्ध के लिए भी कही जाती है, जो भारतीय परम्परा के सर्वथा विरुद्ध है। भारतीय परम्परा में नैतिकता का स्थान सर्वोपरि है, फिर चाहे सामान्य काल हो या युद्ध-काल। पर अब पश्चिम की हवा के प्रभाव से चुनाव-युद्ध में भी सबसे अधिक क्षति नैतिकता को उठानी पड़ती है। चरित्र-हनन का प्रक्षेपास्त्र चाहे जब, चाहे जिस व्यक्ति पर निशंक होकर छोड़ा जा सकता है।

भारत संसार का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और हम भारतवासी उस पर गर्व करते भी नहीं थकते। अपने चारों ओर फैले अन्य पड़ोसी देशों को जब हम लोकतंत्र के लिए धिधियाते और बिलबिलाते देखते हैं, तो अनायास हमारा हाथ अपनी मूर्खों पर ताव देने को ऊपर उठ जाता है। पर इस 'हमारा भारत महान्' ने और 'महतो महीयान्' लोकतंत्र ने जितनी मिट्टीपलीत लोकतंत्र की की है, उतनी कोई और क्या खाकर करेगा? आखिर देश महान् है तो मिट्टीपलीत भी इस गौरवपूर्ण विशेषण से वंचित क्यों रहे? वह भी महान् ही होनी चाहिए।

इस चुनाव-युद्ध में 'सब कुछ जायज़' के नाम पर उचित-अनुचित का कितना विवेक रखा जायेगा, उसकी झांकी भी बहुजन समाज पार्टी के 'बहादुर' युवकों ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की समाधि को जूतों से रौंद कर और उसमें तोड़-फोड़ करके दिखा ही दी है। आश्चर्य है कि जहां अन्य सब राजनीतिक दलों ने इस कुकृत्य की तीव्र भर्त्सना की है, वहां उसके एकच्छत्र स्वयंभू नेता कांशीराम ने इसकी निन्दा में दो कोड़ी की ज़बान तक नहीं हिलाई। क्या इन्हीं कारनामों से महात्मा गांधी के स्थान पर भीमराव अम्बेडकर की समाधि बनाने का नारा पूरा होगा? अभी तो चुनावी रथयात्रा प्रारम्भ भी नहीं हुई, पर पहियों की उड़ती धूल में पूत के पांव पालने में दिखने शुरू हो गये। आखिर मण्डल के कमण्डल से जो काला ज़हर निकला था, क्या उसका इतना असर भी न होता! अभी तो कनक-रूपी धतूरे को खाने की नौबत भी नहीं आई, पर 'यह पाये बौराय' वाली कहावत चरितार्थ होने लग गई।

फिर जब से राजनीति में अपराधीकरण का प्रवेश हुआ है और बड़े-बड़े हिस्ट्री-शीटर भी मुख्यमंत्रियों के पदों को सुशोभित करने लगे हैं, तब से तो इस लोकतंत्र का भगवान् ही मालिक है। इन बड़े पदों के स्वर्णिम सिंहासनों को थामे रखने के लिए किस प्रकार गुण्डों के गिरोहों को अपने चारों ओर जमा करना पड़ता है, उसका प्रमाण यह है कि पहले केवल विभिन्न राजनीतिक दल ही मतदान केन्द्रों पर कब्ज़ा करने के लिए अपने लठैत और डकैत सिपाहियों की सेना तैयार किया करते थे, पर अब तो सरकार को भी चुनाव-युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए

अपने परिवहन विभाग को यह आदेश देना पड़ता है कि अमुक—अमुक इलाके में बूथों पर कब्जा करने के लिए इतनी जीपों की व्यवस्था कर दी जाए। कौन कह सकता है कि बिहार के मुख्यमंत्री श्री लालूप्रसाद यादव निरे लल्लू—पच्चू हैं। अरे, ये वही लल्लू हैं जिन्होंने सहरसा में सवेरे चार बजे लालकृष्ण आडवानी को गिरफ्तार करके खम ठोक कर कहा था कि “कौन कहता है कि ‘लालू’ को राजनीति नहीं आती, राजनीति तो कोई हमसे सीखे। बिचारे मुलायम सिंह टापते रह गये और हमने अपना झण्डा गाड़ कर दिखा दिया।”

बिचारे मुलायम सिंह सचमुच गच्चा खा गए। पर हार कैसे मान लेते? तब उन्हें अपनी ‘यादवी’ का करिश्मा दिखाने के लिए राम—जन्मभूमि के पावन स्थल पर निहत्थे रामभक्तों पर अंधाधुंध गोली चलाकर अपना सिक्का मनवाना पड़ा और देशवासियों के सामने इन दोनों को ही ‘महापुरुष’ मानने के सिवाय कोई चारा नहीं बचा। जब ऐसे महापुरुष चुनाव के दंगल में अपनी लंगोट घुमायेंगे, तो किसी अन्य पहलवान की क्या मजाल कि इनकी ओर आंख उठाने की भी ताब ला सके!

ये आगामी दो मास सचमुच राष्ट्र के लिए और राष्ट्रवासियों के लिए चुनौती बनकर आए हैं। दोनों ही कसौटी पर हैं। ‘घड़े तो मेवा चाख ले, गिरे तो चकनाचूर।’ यह तो राष्ट्रवासियों को और राष्ट्रवासियों के समुच्चय—स्वरूप पूरे राष्ट्र को ही फैसला करना है कि वह अपने ही पांव पर कुल्हाड़ी मार कर आत्मघात के पथ पर चलना चाहता है, या विवेक—पूर्वक इस स्वर्ण—अवसर को अपने सुखद भविष्य का संवाहक बनाना चाहता है।

२४ मार्च १९६१



राजधर्म का अभिप्राय भी राजकीय धर्म नहीं, जिसमें किसी सम्प्रदाय—विशेष को प्रश्रय दिया जाता हो और विभिन्न सम्प्रदायों का दमन किया जाता हो; प्रत्युत राजा के लिए और राज्यकार्य से संबंधित व्यक्तियों के लिए उन भयादाओं का निर्धारण ही राजधर्म है, जिनसे बिना किसी भेदभाव के समस्त प्रजा का पालन हो सके। भारतीय मानस की यही चिन्तन—परम्परा रही है, और आज भी भारत के जन—जन को जितनी आसानी से यह भाषा समझ में आती है, उतनी आसानी से पश्चिम के इतिहास से और वहीं के राजतंत्र की प्रणालियों से आई धर्म और राजनीति की भाषा नहीं।

सुभाषित

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्य-साधिका ।

तृणैर्गुणत्वभाषणैर्बध्यन्ते मत्त-दन्तिनः

संहतिः श्रेयसी राजन् विगुणेष्वपि बन्धुषु ।

तुषैरपि परिभ्रष्टा न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥

छोटी-छोटी वस्तुएं भी मिल कर संगठित हो जाएं तो कार्य सिद्ध हो जाता है। छोटे-छोटे तिनके मिलकर जब रस्से का रूप धारण कर लेते हैं, तो उससे मदमस्त हाथी भी बांधे जा सकते हैं।

हे राजन्! विरोधी गुणों और स्वभाव वाले बन्धुओं का भी परस्पर संगठित होना बहुत श्रेयस्कर होता है। यदि धान अपने तुष से, छिलके से अलग हो जाए तो वह अंकुरित होने का सामर्थ्य खो बैठता है।

अभी देर नहीं हुई

चुनाव-युद्ध के नगाड़े बजने शुरू हो गए। प्रत्याशियों की धमा-चौकड़ी प्रारम्भ हो गई। राजनीतिक दलों के दफ्तरों की सरगर्मियां बढ़ गईं और कम्यूटरों की जोर-आज़माइश प्रारम्भ हो गई। अभी सेनाएं बैरकों में पड़ी तेल-मालिश में जुटी हैं और समय आने पर मैदान में कूद पड़ने को लालायित हैं। सिपहसालार लोग अपनी-अपनी रण-नीति बनाने में लगे हैं और अपनी विजय के अलावा इस बात पर अधिक ध्यान दे रहे हैं कि प्रतिद्वन्द्वी के शिविर में कैसे सेंध लगाई जाए। दल में से उसको निकालने और उसको शामिल करने की जोड़-तोड़ शुरू हो गई है। सम्भावित प्रत्याशी लोग अपने-अपने चुनाव-क्षेत्र का आकलन कर रहे हैं और यह हिसाब भी लगा रहे हैं कि सुरसा की तरह बढ़ती मंहगाई के माहौल में चुनाव-आयोग द्वारा निर्धारित व्यय-राशि में कैसे काम चलेगा।

पर हमें चिन्ता दूसरी है। युद्ध अभी शुरू नहीं हुआ, पर उसकी पूर्व-पीठिका के रूप में आए दिन जो समाचार आ रहे हैं वे कोई शुभ-शकुन प्रकट नहीं करते। पंजाब और कश्मीर में हत्याएं और निरीह नर-संहार की घटनाएं तेज़ी से बढ़ गई हैं। भारत की राजधानी में आतंकवादियों की घुसपैठ की खबरों से रोज़ 'रेड अलर्ट' के ज़रिये पुलिस को सावधान किया जाता है, पर आतंकवादी कनाट प्लेस जैसे राजधानी की नाक कहे जाने वाले क्षेत्र में चाहे जहां भीषण बम-विस्फोट करने से बाज़ नहीं आते। यह कैसा 'रेड अलर्ट' है? क्या जनता को इस शब्द का अर्थ

समझने में भ्रम तो नहीं हो गया? 'रैड अलर्ट' का अर्थ 'खुली छूट', पता नहीं किसी डिक्शनरी में मिलेगा या नहीं, पर व्यवहार में उसका यही अर्थ—प्रतीत होता है।

आतंकवादियों से निबटने के लिए आज तक सरकार ने कोई कारगर नीति नहीं अपनाई। वी०पी० सिंह या चन्द्रशेखर की सरकार आतंकवाद की समस्या को सुलझाने के लिए भी हमेशा सर्व-सहमति की बात दुहराती रही, जैसे यह भी कोई आध्यात्मिक या धार्मिक गोष्ठी हो। क्या आतंकवाद भी शास्त्रार्थ का विषय है? क्या आज तक संसार में कहीं भी आतंकवादी की बन्दूक किसी अहिंसावादी उपदेश के आगे झुकी है? क्या लातों के भूत कभी बातों से वश में आए हैं? फिर आप भले ही आतंकवादियों से सीधी बातचीत करने के कितने ही खुशफहमी के गुब्बारे उड़ाते रहें। पहल हमेशा जब तक उनके हाथ में है, तब तक वे आपके साष्टांग दण्डवत् करने पर भी बात करने क्यों आएंगे? फिर जब केन्द्र में स्वयं सरकार का अस्तित्व ही सूली पर टंगा हो, तब उससे बातचीत? राम भजो!

हमें तो यह भी लगने लगा है कि इस बार के चुनाव का मुख्य आधार ही आतंकवाद होगा, केवल पंजाब या कश्मीर में ही नहीं, अभी तो वहां चुनाव करवाने का फैसला भी नहीं हुआ, प्रत्युत अन्य सब राज्यों में भी। क्या आप देखते नहीं कि विभिन्न राज्यों में किस प्रकार गुण्डे और मुस्टण्डे पाल-पोस कर तैयार किये जा रहे हैं? किस प्रकार वे देश के भविष्य के संरक्षक बनकर, मौका पड़ते ही अपना-अपना जौहर दिखाने के लिए लाठियों को तेल पिला रहे हैं? अन्यथा चौटाला के तीसरी बार हरियाणा का मुख्यमंत्री बनने का और क्या अभिप्राय है? यही न कि अब सारे हरियाणा को मेहम बनाकर छोड़ना है। वे इसी विद्या में तो माहिर हैं। बाप और बेटे ने मिलकर जैसे सारे देश को अपनी छलनीति की अंगुली पर नचा रखा है। पहले बाप और बेटे ने मिलकर विश्वनाथ प्रताप सिंह को गिराया, फिर हरियाणा के दो सिपाहियों को राजीव के निवास पर जासूसी के लिए तैनात कर इस छोटी सी बात पर 'मि० क्लीन' को भड़का कर चन्द्रशेखर की सरकार को गिरवाया, और अब जब देखा कि केन्द्र में भी कोई जवाब-तलब करने वाला नहीं, तो हरियाणा के राज्यपाल को जबरदस्ती चण्डीगढ़ ले जाकर अपने लाड़ले की तीसरी बार ताज़पोशी करवा दी।

दलील सिर्फ यह है कि उसके बिना हरियाणा में जनता दल चुनावों में विजय प्राप्त नहीं कर सकता। नहीं, यह दलील का केवल ऊपरी रूप है। असली रहस्य तो गुफा में छिपा है। 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्।' उस रहस्य का हमने ऊपर संकेत किया है कि अब सारा हरियाणा मेहम बन कर रहेगा। उसके लिए ग्रीन ब्रिगेड पूरी तरह तैयार है। जब से हरियाणा विकास मंच के जनक और कांग्रेस से सद्यः—निष्कासित, तीनों 'लालों' में से एक श्री बंसीलाल ने यह रहस्योद्घाटन किया

है कि ग्रीन ब्रिगेड को सेना के अधिकारियों की ओर से शस्त्रास्त्र सप्लाई किये जा रहे हैं, तब से तो ग्रीन ब्रिगेड सीधी पंजाब और कश्मीर के आतंकवादियों की कोटि में ही आ गई है। बात घूम फिर कर वहीं आ गई कि इस बार का चुनाव आतंकवादियों के भरोसे ही लड़ा जाएगा और उसी भरोसे से विजय-प्राप्ति की आशा की जा रही है। कल्पना करिये कि इस आतंकवाद के माध्यम से राज्यों में, या केन्द्र में भी जो सरकार आएगी, उसकी क्या स्थिति होगी? नहीं, सरकार की स्थिति की हमें चिन्ता नहीं है? हमें चिन्ता है उस जनता-जनार्दन की जो इस आतंकवाद के माध्यम से बनी सरकार की चक्की के दो पाटों के बीच पिसने को बाध्य होगी।

पर अभी बात समाप्त कहां हुई है? कोढ़ में खाज की तरह एक नया पहलू यह भी है कि ज्यों-ज्यों युद्ध का समय नज़दीक आ रहा है, त्यों-त्यों राजनीतिक नेता अपने-अपने समीकरण बदल कर जातिवाद और साम्प्रदायिकता का आश्रय लेते जा रहे हैं। राजीव गांधी अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों और अध्यापकों से गुप्त मंत्रणा कर रहे हैं। अलीगढ़ विश्वविद्यालय किस प्रकार आज तक मुस्लिम साम्प्रदायिकता का गढ़ रहा है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। विश्वनाथ प्रताप सिंह तो जब प्रधानमंत्री थे, तब भी बिना शाही इमाम अब्दुल्ला बुखारी से सलाह लिये 'पादमेकं न गच्छामि' की प्रतिज्ञा पर अड़े थे। उनकी पतवार अब भी उन्हीं के हाथों में है। उधर मुलायम सिंह भी पूरी सख्ती से इसी दिशा में कार्यरत हैं। बहुजन समाज पार्टी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की समाधि को पांवों तले रौंद कर अपना भीतरी रूप दिखा चुकी है। रही भाजपा, विशाल हिन्दू समाज का प्रतिनिधित्व करने का दावा करने वाली, पर शहरों से बाहर गांवों में बेआवाज़, बेअसर। हाय! जातिवाद के पचड़े में फंसा यह विशाल हिन्दू समाज कब अपनी शक्ति को पहचानेगा? कब ईश्वर-प्रदत्त इस अवसर का सदुपयोग करने के योग्य बन सकेगा?

अभी बहुत देर नहीं हुई है। समय है, समस्त हिन्दुत्ववादी संस्थाएं एक मंच पर आ जाएं। एक समता-मूलक, शोषण-रहित, जाति-पाति के भेद से दूर, पाखण्डों और अन्धविश्वासों से परे, एक स्वस्थ पूर्ण राष्ट्रवादी दृष्टिकोण लेकर अपने राष्ट्रीय दायित्व को पहचानें, तदनुकूल आचरण करें, धर्मनिरपेक्षता की ओट में चलने वाली कट्टर साम्प्रदायिकता का पर्दाफाश करें। दलीय हितों को छोड़कर केवल राष्ट्रीय हितों को ही अपना लक्ष्य बनाएं तो भविष्य के लिए कुछ आशा बंध सकती है। नहीं तो चारों ओर सिवाय अन्धकार के और कुछ नज़र नहीं आता। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय,' हमें अन्धकार से निकाल कर प्रकाश के पथ पर ले चलो, प्रभो!

सुभाषित

जीवन को सत्य बनाने के लिए आवश्यक है कि हम विश्वास करें कि इस अनिश्चय का, इस अन्धेरे का, जिसमें हम संघर्षरत हैं, किसी दिन प्रकाशपूर्ण हल प्राप्त हो जायेगा, और इस क्षण भी हमारे पास उस ज्ञान के ऐसे छोटे-मोटे चिह्न हैं, जो प्रकाश से आखें चार होने पर हमें मिलेगा।

यदि हमारा कोई प्यारा साथी किसी छोटे और असुविधाओं से भरे हुए घर को बदल कर एक ऐसे भवन में पहुंच जाये जो धूप से उजला हो और जिसके फर्श में प्रसन्नता, आश्चर्य और सौन्दर्य की अनन्त झलमलाहट हो, तो निःसन्देह हम दुखी नहीं होंगे। हम कहेंगे कि अमुक भाग्यवान् निकला और मन ही मन हम भी उस समय की कल्पना करेंगे जब हम स्वयं रोजमर्रा के धंधों के बोझ को एक तरफ धर कर उसके सौन्दर्य और प्रकाश से भरे हुए घर में जा बसेंगे।

— 'हेलेन केलर' ('मुक्त द्वार' से)

वायदों का अर्थ

पिछले एक पखवाड़े से विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा अपने-अपने घोषणा-पत्र जारी करने की होड़ सी लगी रही। जब तक ये पंक्तियां पाठकों के पास पहुंचेगी तब तक चुनावी महाभारत के रणक्षेत्र में कूदने वाले प्रत्याशियों के नाम अंतिम रूप से जनता के सामने आ चुके होंगे। अभी तक तीस हजार उम्मीदवारों ने अपने नामांकन-पत्र भरे हैं और नाम वापस लेने की अंतिम तारीख २६ अप्रैल के बाद यह स्थिति और स्पष्ट हो जायेगी कि कौन किस पाले में है, और कौन किस पाले में। निर्दलीयों की संख्या भी कम नहीं होगी, इसलिये वे चाहे किसी पाले में न हों पर कबड्डी खेलने का भी अपना एक मजा है। यह मजा जनता के लिये कितना ही भारी क्यों न पड़े, पर उम्मीदवारों को खाली बैठे-बैठे एक शुगल तो मिला।

इस चुनावी महाभारत में अभी से फैसला करना मुश्किल है कि कौन कौन हैं और पाण्डव कौन हैं। कुछ तो राजनैतिक दलों की चिरपरिचित अक्षौहिणी के साथ और कुछ छुटभैये पांचवे घुड़सवार बनकर अपने-आप को ही असली योद्धा सिद्ध करने के प्रयत्न में जुट गये हैं।

निर्दलीयों को एक लाभ और भी है। राजनैतिक दलों को अपने-अपने दलों की सार्थकता सिद्ध करने के लिए अपने घोषणा-पत्र जारी करने पड़ते हैं। निर्दलीय इस झंझट से भी मुक्त हैं। उनका तो ज़बानी घोषणा-पत्र ही काफी है। इस मंहगाई

के जमाने में कागज और छपाई के अन्धाधुन्ध खर्च की मुसीबत भी क्यों उठाई जाए। जब से भारतीय राजनीति के उखाड़-पछाड़-प्रवीण चौटाला और रणजीत जैसे विरोधी सपूतों के स्वनामधन्य पिताश्री चौधरी देवीलाल ने यह घोषणा की है कि हम सत्ता में आते ही दल-बदल-विरोधी कानून को रद्द कर देंगे, निर्दलीयों के लिए अनायास इन्द्रलोक का द्वार सहज ही खोल दिया है। अब तो यह भी पास हो गया है कि जो एक बार चुनाव जीत कर लोकसभा में आ जाये वह जन्म भर के लिये पेंशन का अधिकारी बन जायेगा। इस लोभ के रहते एक बार भाग्य अजमाने में हर्ज ही क्या है?

विभिन्न दलों के घोषणा-पत्रों में जो वायदे किये गये हैं, उनके बारे में क्या कहा जाए! वायदे तो केवल करने के लिए होते हैं, निभाने के लिये थोड़े होते हैं! हमारे मित्र, दिवंगत प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री पं० विश्वबन्धु शास्त्री दर्शन और व्याकरण के अद्भुत पंडित थे। इसलिये उनको शब्दों से खिलवाड़ करने में बड़ा आनन्द आता था। वे कहा करते थे—‘वायदे का अर्थ क्या है? व माने विकल्प से, यदा माने यदा कदा।’ वह जमाना चला गया जब लोग अपना वायदा निभाने के लिए अपनी जान तक को दांव पर लगा देते थे। ‘प्राण जाहिं पर वचन न जाहिं’, यह रीति रघुकुल की रही होगी, आजकल के खरबन्दा कुलभूषणों की नहीं। अब तो वायदे केवल तोड़ने के लिये किए जाते हैं। जो वायदे नहीं करेगा, वह तोड़ेगा क्या? आखिर आजकल की राजनीति जोड़ने के बजाय तोड़ने के लिये ही तो होती है।

फिर भी चुनावी घोषणा-पत्रों का अपना एक महत्त्व है। हालांकि जनता कभी इन घोषणा-पत्रों के हिसाब से वोट नहीं देती, परन्तु बुद्धिजीवियों की वाक्प्रतियोगिता के लिए यह अच्छा मसाला जुटा देते हैं। इसलिये एक से एक बढ़कर वायदे करने में कोई हानि नहीं। फिर भी इन घोषणा-पत्रों से दलीय नेताओं के चिन्तन की दिशा तो पता लगती ही है। इस बार कांग्रेस ने पूरे ६४ पृष्ठों का घोषणा-पत्र जारी किया है। शायद सोचा होगा चाहे तुक मिले या न मिले, जाट के सिर पर कोल्हू रख देने से बोझ तो मरेगा। हम समझते हैं कि कांग्रेस की ओर से पूरा घोषणा-पत्र पढ़ने वालों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए। बिचारा अनपढ़ देहाती? वह तो ६४ पृष्ठों की संख्या सुनकर ही दहल जायेगा।

कई अन्य राजनैतिक दलों की तरह कांग्रेस ने भी यह घोषणा की है कि १५ अगस्त १९४७ से पूर्व उपासना-स्थलों की जो स्थिति थी, उसको बरकरार रखने का कानून बनाया जायेगा। इसी प्रकार की बात राष्ट्रीय मोर्चे और जनता दल की ओर से भी कही गई है। इसका सीधा अर्थ यही तो है जिन उपासना स्थलों पर १५ अगस्त १९४७ को विवाद था, वह विवाद अब भी ज्यों का त्यों कायम रखा जायेगा।

यह कैसा समाधान है? अगर आपकी दृष्टि में यही समाधान है, तो सोमनाथ के मन्दिर का क्या करेंगे, जहां १५ अगस्त १९४७ के दिन एक घुड़साल और कब्रिस्तान बना हुआ था? क्या सोमनाथ के मन्दिर को तोड़कर कांग्रेस फिर कब्रिस्तान बनायेगी?

इन राजनैतिक दलों की इस प्रकार की घोषणा का अर्थ केवल यही है कि वे समाधान नहीं चाहते, पुराने विवाद को ज्यों का त्यों रखना चाहते हैं। वास्तविक समाधान तो तभी हो सकता है जब उपासना-स्थलों का प्रयोग किसी भी मूल्य पर राजनैतिक कार्यों के लिये न किया जाये। उपासना पद्धति में भेद स्वीकार्य है, वह व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता का प्रतीक है। पर जब उपासना-स्थलों का उपयोग राजनैतिक कार्यों के लिये किया जाता है, तभी साम्प्रदायिकता जन्म लेती है। इस साम्प्रदायिकता की पराकाष्ठा तब होती है जब कोई व्यक्ति अपने सम्प्रदाय को राष्ट्र से बड़ा मानने लगता है। राष्ट्रीयता का इससे बढ़कर अपमान हो ही नहीं सकता। दुर्भाग्य से हमारे देश की मस्जिदें और गुरुद्वारे इसी प्रकार की राष्ट्र-विरोधी साम्प्रदायिकता के गढ़ सिद्ध होते रहे हैं। जो मज़हबी पुस्तकें समाज में परस्पर विद्वेष, घृणा और हिंसा को बढ़ाती हैं, निश्चित रूप से वे भारत की सहिष्णुता-प्रधान संस्कृति की श्रेष्ठ परम्पराओं के सर्वथा विपरीत हैं। कम से कम सरकारी स्तरों पर उनको मान्यता नहीं मिलनी चाहिए। यह बात कहने का साहस किसी राजनैतिक दल में नहीं है।

आज देश की सबसे बड़ी समस्या यही तो है कि कोई व्यक्ति राष्ट्र-हित को प्रमुखता नहीं देता, सबके सामने अपने-अपने राजनैतिक दलों की वफ़ादारी का ही जुनून हावी है। यह वही संकीर्ण मनोवृत्ति है जो व्यक्ति को राष्ट्र से बड़ा मानती है, जिस प्रकार कि कुछ संप्रदाय अपने संप्रदाय को राष्ट्र से बड़ा मानते हैं। आज हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य हैं, और बंगाली-गुजराती-मराठी या पंजाबी हैं, भारतीय कौन है? सबसे बड़ी बिड़बना यही है कि हमारे देश में चुनाव भी जातीय, प्रादेशिक या भाषायी आधार पर लड़े जाते हैं और उसी आधार पर राजनैतिक समीकरण तैयार करके अपनी-अपनी गोटें बिठाई जाती हैं।

चुनावी घोषणा पत्रों का और उनमें किये वायदों का यहां विस्तार से विश्लेषण करने की गुंजायश नहीं है। परन्तु मूल समस्याओं की ओर ध्यान देना आवश्यक है। जब तक हम राष्ट्र-हित को प्राथमिकता देकर अपने चिन्तन की दिशा नहीं बदलेंगे, तब तक कितने ही वायदे कर लीजिए, उन पर विश्वास करने का मन नहीं होता। कोई राजनैतिक दल ऐसा भी होना चाहिए जो 'राष्ट्र-देवो भव' इस मन्त्र से स्वयं अनुप्राणित हो और राष्ट्र के जन-जन में इस को भर दे।

सुभाषित

आखिर भारतवर्ष है क्या? वह विभिन्न जातियों, धर्मों, संप्रदायों और राष्ट्रीयताओं का एक समूह सा है, या वास्तव में एकनिष्ठ राष्ट्र है। अगर भारत एक है तो उस राष्ट्र का अपना एक ऐसा स्वरूप होना चाहिए, उसकी अपनी कुछ ऐसी स्पष्ट मान्यताएं होनी चाहिए जिन्हें रीति-रिवाजों की, विभिन्न उपासना-पद्धति, भाषा या क्षेत्र की भिन्नता प्रभावित नहीं करती। भारतीय दर्शन तो यह मानता है कि व्यक्ति-व्यक्ति के विचारों में भेद होते हैं। विचारों के भेद, रीति-रिवाजों का भेद, वेशभूषा का भेद तो एक ऐसा यथार्थ और एक ऐसी वास्तविकता है, जिससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। पर इस भेद का अर्थ यह नहीं होता कि हम राष्ट्रीय स्वरूप का परित्याग कर दें। उदाहरण-स्वरूप शरीर के सभी अंग एक समान नहीं होते, पर अंगों की इस विभिन्नता का अर्थ यह नहीं होता कि शरीर ही नहीं है। अंगों की विभिन्नता शरीर को एक नया व्यक्तित्व, नया आकर्षण प्रदान करती है और उसे विशेष रूप से उपयोगी बनाती है। यही स्थिति उन विभिन्नताओं की है जो भारत में देखने को मिलती हैं।

— डॉ० मुरली मनोहर जोशी

नई सरकार के गठन से पहले

जब ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं तब चुनावी महासमर का प्रचार-कोलाहल शान्त हो चुका है, पर मतदान में अभी दो दिन शेष हैं। जब तक ये पंक्तियां पाठकों के पास पहुंचेंगी तब तक संसार के इस सबसे बड़े लोकतंत्र में लगभग साढ़े बावन करोड़ लोग अपने मताधिकार का प्रयोग कर चुके होंगे और अपनी ओर से देश के भाग्य की बागडोर संभालने वालों का निर्णय करने के लिए काल के भाल पर तिलक की तरह मतपत्रों पर अपनी मोहर लगा चुके होंगे, पर मतगणना तब तक शुरू नहीं हुई होगी।

अद्भुत है यह संसार का महान्तम लोकतंत्र! जहां आसपास के अन्य सब देश प्रबल राजनीतिक झंझावातों से ग्रस्त होकर अस्थिरता का उदाहरण उपस्थित करते रहे हैं, वहां भारत के इस लोकतंत्र की स्थिरता पर संसार आश्चर्य करता रहा है। लगता है, अस्थिरता के रेगिस्तान में महान्तम होते हुए भी भारतीय लोकतंत्र एक नखलिस्तान की तरह है। पर स्वयं देशवासी ही जानते हैं कि बाहर से नखलिस्तान की तरह दीखने वाला यह लोकतंत्र अन्दर से कितना जर्जर हो चुका है। एक तरफ नोस्ट्रेडेमस की भविष्यवाणी और योगिराज अरविन्द घोष का आशावाद धैर्य बंधाता है, किन्तु दूसरी ओर आए दिन की घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी

बुद्धिजीवी इस लोकतंत्र के चाहे जब ध्वस्त होने और बिखर जाने की भविष्यवाणी करने से भी बाज नहीं आते।

आखिर क्यों गठित की गई हैं विभिन्न निहित स्वार्थों की शस्त्रधारी सेनाएं? क्यों चुनावों से पहले ही देश भर में लगभग दो सौ हत्याएं हो चुकी हैं? कितने ही विरोधी उम्मीदवारों की गोली मार कर हत्या कर दी गई है और वहां चुनाव स्थगित कर दिये गये हैं। कौनसा ऐसा नेता है जिस पर पथराव और हमला न हुआ हो। कितने हिस्ट्रीशीटर चुनावों में उम्मीदवार बने हैं और कितने गुन्डे और अपराधकर्मी अभी से किराये पर मतदान-केन्द्रों पर कब्जा करने के लिए तैयार रखे गये हैं—यह बात किसी जानकार से छिपी नहीं है। जब बिहार के स्वनामधन्य मुख्यमंत्री स्वयं श्रीमुख से यह घोषणा करते हैं कि “राम नाम लेने वालों को बंगाल की खाड़ी में डुबो दो, आडवाणी जहां मिले, उसे ठोको और पीटो, ‘भूरा बाल’ का सफाया करो”, तब आप अन्दाज लगा सकते हैं कि इस लोकतंत्र की अन्दरूनी हालत क्या है?

क्यों ‘भूराबाल’ नहीं समझे? भू का अर्थ भूमिहार, रा का अर्थ राजपूत, बा का अर्थ ब्राह्मण और ल का अर्थ लाला—अर्थात् सब सवर्णों का सफाया कर दो। धन्य है मण्डल आयोग का यह विश्वनाथ द्वारा प्रवर्तित विश्वव्यापी विध्वंसी ताण्डव—नृत्य! रही—सही कसर सद्दाम और इमाम ने पूरी कर दी। राजीव गांधी सद्दाम के समर्थन को भुनाने से सिर पर मुकुट धारण करने को आशान्वित हैं और जनता दल इमाम के फतवे के भरोसे पुनः कुर्सी हथियाने के चक्कर में है। एक तरह से यह कहना ठीक ही है कि इस बार का चुनाव सद्दाम, इमाम और राम के नाम पर लड़ा जा रहा है। इन नारों ने जैसा विष घोल दिया है सबकी नसों में, उसी का यह परिणाम है कि आगामी तीन-चार दिन बहुत खूनी और भयंकर आशंकाओं से घिरे हुए हैं। इसलिए जब तक मतदान और मतगणना शान्तिपूर्वक नहीं निबट जाते, तब तक सांस रोके सारे दृश्य-पटल पर नजर रखनी होगी।

पर हमें चिन्ता उसके बाद भी सता रही है। मान लीजिए, मतगणना तक सब काम येन-केन-प्रकारेण निपट गया और उसमें किसी भी राजनीतिक दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला, इतना कि वह अपने ही अकेले बलबूते पर सरकार का गठन कर सके, तो फिर वही मिली-जुली सरकार का परीक्षण दोहराना होगा—जिसे दोहराते-दोहराते देश तंग आ चुका है। त्रिभुज की एक भुजा चाहे जितनी लम्बी हो, पर बाकी दोनों भुजाओं के मिल जाने पर वह छोटी पड़ ही जाएगी। इसलिए स्थिरता की बात तो तब भी नहीं बनती। यदि कांग्रेस को पूर्ण बहुमत न सही, बहुमत ही मिल जाता है, और उसे जनता दल, कम्युनिस्ट और समाजवादी जनता दल से मिलकर सरकार बनाने की सृजनी है, तो सद्दाम और इमाम दोनों

के मिल जाने पर देश का कैसा बंटोदार होगा, यह कल्पना ही की जा सकती है। यदि भाजपा को लेकर कांग्रेस सरकार बनाती है, जिसकी दोनों दलों की घोषणा के अनुसार कोई सम्भावना नहीं है, तो सद्दाम और राम की जोड़ी कैसे निभेगी और कब तक निभेगी?

फिलहाल तो जहां तक कल्पना की जाती है, सिवाय मिली-जुली सरकार के और कोई भविष्य नज़र नहीं आता। मिली-जुली सरकार कब तक चलेगी? क्या फिर कुछ महीने बाद नये चुनाव होंगे? क्या संसार के इस महान्तम लोकतंत्र की यही दुर्गति उसकी नियति होगी?

पर ठहरिये! अभी कुछ कहना जल्दबाज़ी होगी। लोकतंत्र में सौ झंझटों और रुकावटों के बावजूद कभी-कभी चमत्कार भी हो जाते हैं। कभी-कभी कुछ लोग भारतीय जनता की सूझबूझ और समझदारी की भी प्रशंसा करते हैं। क्या मालूम, वह समझदारी ही कुछ रंग दिखा दे और सब काल्पनिक अनुमानों को झुठला दे। तब निराशा में भी आशा की एक चिंगारी-सी नज़र आती है।

२६ मई १९६१



हिन्दू राज्य ही क्यों?

‘भारत के राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने २५ जनवरी १९६५ की रात को राष्ट्र के नाम संदेश में संस्कृत के एक श्लोक का उच्चारण किया था

हिमालयं समारभ्य यावदिन्दु-सरोवरम्।

हिन्दुस्थानमिति ख्यातम् आद्यन्ताक्षर-योगतः॥

(कुलार्णव-तंत्र)

‘हिमालय से लेकर इन्दु-सरोवर (कन्या-कुमारी) पर्यन्त, हिमालय के आदि-अक्षर ‘हि’ और इन्दु के अन्तिम अक्षर ‘न्दु’ को मिलाकर बना ‘हिन्दू’-शब्द हिन्दुस्तान का वाचक है।’...

न केवल इस देश का नाम ‘हिन्दु’ है, प्रत्युत इसके निवासियों का नाम भी हिन्दु है।...इसलिए ‘हिन्दू’ शब्द का अर्थ हुआ ‘भारतीय’...जब ‘जय हिन्दु’ हमारा राष्ट्रीय नारा है, तब ‘जय हिन्दू’ में अराष्ट्रीयता कैसे हो सकती है?

धर्म-निरपेक्षता का विचार संसार को हिन्दुओं की देन है।...यह देश तभी तक धर्म-निरपेक्ष है, जब तक यह हिन्दू-बहुल है। जिस दिन इस देश में अपने-आपको हिन्दू कहने वाले अल्पसंख्यक हो जाएंगे, उस दिन यह देश धर्म-निरपेक्ष भी नहीं रहेगा। महात्मा गांधी जिसे ‘राम-राज्य’ कहते थे, हमारे हिन्दू-राज्य का आदर्श भी वही है।’

—‘वयनिका’, पृष्ठ १८८-१९१

पंजाब में चुनाव : एक खतरनाक खेल

केन्द्रीय सरकार पंजाब में चुनाव करवाने की ज़िद पर कायम है और हालात कुछ और ही दास्तान कह रहे हैं। श्री चन्द्रशेखर ने जिस तरह आतंकवादियों से बात करने की मुहिम चलाई थी, और उन्हें सब तरह सुरक्षा और सहूलियतों की गारण्टी देकर अपने भौंडसी के पंचतारांकित होटलनुमा आश्रम में आधी रात को उनसे गुपचुप बातचीत की थी, उससे देश में काफी हलचल मची थी। कहा तो यहां तक जाता है कि प्रधानमंत्री ने आतंकवादियों से कोई गुप्त समझौता किया था, और उसी समझौते के अन्तर्गत चुनावों की घोषणा के बाद लगभग ७०० आतंकवादियों को जेलों से रिहा कर दिया गया।

पंजाब को भी लोकतांत्रिक प्रक्रिया से जोड़ने के लिए सिवाय चुनाव के और कोई रास्ता नहीं है। केवल सुरक्षाबलों और सेना के भरोसे वैसा सम्भव नहीं है। पर जब समुद्र से तूफान आने की सम्भावना होती है, तो मौसम विभाग वाले पहले से ही मल्लाहों को चेतावनी दे देते हैं कि तूफानी समुद्र में नाव न चलाएं। अभी हाल में बांग्लादेश में इस प्रकार की चेतावनी के अभाव में, या चेतावनी देने पर भी उसकी परवाह न करने का भीषण परिणाम हम देख चुके हैं। बांग्लादेश में धन-जन की जितनी हानि हुई है उसे सारे संसार से आई अधिक से अधिक राहत सहायता भी दूर करने में असमर्थ रही है। अब वहां तूफान के बाद भी हैजा और मलेरिया जैसी महामारियों का प्रकोप है।

निष्पक्ष और शान्तिपूर्ण चुनाव की पहली शर्त यही है कि पहले प्रदेश का वातावरण उसके अनुकूल हो। पर पंजाब में तो तूफान की चेतावनी की ज़रूरत भी नहीं थी। वहां तो पिछले ६-७ साल से निरन्तर तूफान की ही स्थिति है। इसीलिए आर्यसमाज की ओर से शुरु से ही यह मांग की जा रही थी कि पंजाब में तब तक चुनाव न कराये जाएं, जब तक वहां आतंकवाद को समाप्त कर अनुकूल परिस्थितियां पैदा न हो जाएं। पर 'स्वार्थी दोषं न पश्यति।' जब राजनीतिक स्वार्थ मन पर हावी हो तो अक्ल की बात अक्ल में नहीं समाती। राजनीतिक धन्धेबाज़ कभी दूर की या देश के हितों की बात नहीं सोचते। वे केवल तात्कालिक लाभ की बात सोचते हैं, चाहे वह कितना ही क्षणिक हो।

श्री चन्द्रशेखर ने भी सोचा था कि पंजाब में चुनाव करवाकर वे सिखों को अपनी पार्टी के पक्ष में कर लेंगे। पर सिख स्वयं आपस में इतने धड़ों में बंटे हुए हैं कि वे कभी एक नहीं हो सकते। संकीर्ण स्वार्थों की और वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओं की लालसा ने उनके हृदयों को क्षुद्रता की इस सीमा तक पहुंचा दिया है कि कभी-कभी यह कहने को जी चाहता है कि अकाली कौन? जिसमें अक्ल का अकाल हो और कभी किसी दूसरे की अक्ल की बात सुनने को तैयार न हो। और फिर आतंकवादी? उनका तो तर्क और युक्ति से दूर का भी वास्ता नहीं। वे तो केवल बन्दूक की गोली और निरीह लोगों की हत्या के सिवाय और कुछ जानते ही नहीं। पंजाब की किसी समस्या के युक्तियुक्त समाधान में उनकी कोई रुचि नहीं। वे तो केवल अपने आकाओं-पाकिस्तान के हाथ की कठपुतली-मात्र हैं। वहीं से उनको हथियार मिलते हैं, प्रशिक्षण मिलता है और पैसा तथा अन्य सुविधाएं मिलती हैं। इसके अलावा जब चाहे बैंकों को लूटना और बड़े पूंजीपतियों के बच्चों का अपहरण करके फिरौती के नाम पर मुंह मांगा पैसा पाना उनका रोज़ का खेल है। बिचारे पूंजीपति पुलिस में भी रिपोर्ट नहीं करते, इस डर से कि बच्चे की भी जान जाएगी और माता-पिता की भी। पुलिस वाले भी अपनी जान जोखिम में क्यों डालें, उन्हें भी तो अपनी जान प्यारी है। वे भी यही सलाह देते हैं कि अपने बच्चों की जान बचानी है, तो आतंकवादियों को चुपचाप पैसा पहुंचा दो और इतना पैसा हमारे हवाले कर दो तो हम भी सारे कांड से आंखें बन्द कर लेंगे।

पर पंजाब के बारे में केवल इतना ही सच नहीं है। सच यह है कि पाकिस्तान नहीं चाहता कि वहां लोकतंत्र सफल हो, और अगर हो तो चुनाव में केवल आतंकवादी या उनके समर्थक ही जीतकर आवें। वे ही सरकार बनायें और वे विधानसभा में खालिस्तान के पक्ष में प्रस्ताव पास करके केन्द्रीय सरकार के सामने वैधानिक संकट उपस्थित कर दें। इसीलिए चुनावों में खड़े उम्मीदवारों की आए दिन हत्याएं हो रही हैं। अभी तक इन हत्याओं के कारण २१ स्थानों पर चुनाव स्थगित हो चुके हैं, ३५ प्रत्याशी अभी तक लापता हैं और वैसे भी जो उम्मीदवार खड़े हुए हैं, उनमें १३२ व्यक्ति हिस्ट्री-शीटर हैं। कई तो अभी तक जेलों में बन्द हैं और वहीं से चुनाव लड़ रहे हैं। इस आतंकवाद की पराकाष्ठा यह है कि केन्द्रीय गृह राज्यमंत्री श्री सुबोधकांत सहाय पर भी बम से घातक हमला हुआ है। यह अलग बात है कि वे बाल-बाल बच गये। मजेदार बात यह है कि आतंकवादियों को प्रधानमंत्री से मिलाने का मिशन भी अत्यन्त गोपनीय ढंग से श्री सुबोधकांत ने ही पूरा किया था। जिन आतंकवादियों को उन्होंने मिलाया था, उन्होंने ही उन पर हमला भी किया है, क्योंकि वे नहीं चाहते कि हमारे दारुल-खिलाफे में कोई

गैर व्यक्ति चुनाव जीत कर आवे, फिर भले ही वे श्री सहाय ही क्यों न हों। बाहरी कृतज्ञता!

पहले के चुनावों में भी जेलों से नामी गुण्डों को पैरोल पर छोड़वा कर उनके सहयोग से राजनीतिक नेता चुनाव जीतते रहे हैं, और इसी कारण वे गुण्डे जेलों में रह कर भी ए श्रेणी के कैदियों की सब सुविधाएं भोगते रहे हैं। पर अब ज़माना बहुत आगे बढ़ गया है। अब वे अपराधी सोचते हैं कि जब नेतागण हमारे बल पर ही चुनाव जीतते हैं, तो हम स्वयं ही चुनाव में उम्मीदवार बनकर नेता पद पर आरुढ़ क्यों न हों? राजनीति के निरन्तर अपराधीकरण का यही रहस्य है। अब उत्तर प्रदेश और बिहार में घरेलू उद्योगों की तरह अवैध हथियारों के कारखाने पनप रहे हैं। अभी जब कानपुर में दंगों के बाद पुलिस ने बिना किसी लिहाज़ के और राजनीतिक दबाव के दंगाग्रस्त इलाकों में घर-घर तलाशी ली, तो २५० व्यक्ति पकड़े गये। इससे पता लगता है कि यह धन्धा किस तेज़ी से बढ़ रहा है। हो भी क्यों न, जब एक राज्य के मुख्यमंत्री स्वयं अल्पसंख्यकों को उकसा रहे हों कि अपनी रक्षा के लिए अपने घरों में हथियार जमा करो, तो राज्य में हिंसा और आतंकवाद नहीं बढ़ेगा, तो क्या महात्मा गांधी के अहिंसा और प्रेम की बंसी बजेगी?

इस बार के चुनावों में कितने अपराधी लोकसभा और विधानसभाओं में पहुंच जाएंगे, उसकी गिनती अभी से करना कठिन है। एक मुख्यमंत्री हैं जिनके नाम पर विभिन्न थानों में ३४ मुकदमें दर्ज हैं। कितने ही थानों में हिस्ट्रीशीटरों में उनकी तस्वीरें शोभा बढ़ा रही हैं। एक मुख्यमंत्री ऐसे भी हैं जो कालेज के दिनों में स्टेशनों पर किसी असावधान यात्री का ब्रीफकेस या थैला छीनकर नौ दो ग्यारह हो जाते थे। अब धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आ रही है जब राजनैतिक नेता और अपराधी का भेद खत्म हो जाएगा। पंजाब में यही कुछ होता दीखता है। पुलिस वाले भी यही सोचकर किसी अपराधी पर हाथ डालते डरते हैं कि कल यही महानुभाव चुनाव जीतकर मंत्री बन गये तो चुन-चुन कर हममें से हरेक से बदला लेंगे।

इसलिये अच्छा यह होता कि नई सरकार बन जाने पर उसे ही पंजाब में चुनाव करवाने का अधिकार दिया जाता। कांग्रेस ने यही सोचकर पंजाब के चुनावों का बहिष्कार किया है। कम्युनिस्ट पार्टी के दोनों दल भी तीन हफ्ते मतदान की तारीख और आगे बढ़ाने की मांग कर रहे हैं। सरकार पर्याप्त सुरक्षा बल भेजकर उम्मीदवारों की सुरक्षा का आश्वासन दे रही है। पर इस आश्वासन में कितना दम है, यह किसी से छिपा नहीं है। यह ठीक है कि सरकार की पूरी मशीनरी यदि ईमानदारी से चाहे तो चुनाव शान्ति पूर्ण ढंग से हो सकते हैं, जिस तरह हरियाणा के राज्यपाल धनिकलाल मंडल ने वहां चौटाला की ग्रीन ब्रिगेड को मतदान केन्द्रों पर कब्ज़ा नहीं करने दिया। पर पंजाब के आतंकवादियों की बात ही अलग है। यदि भय

से आतंकित मतदाता घरों से ही नहीं निकले तो सुरक्षाबल क्या कर लेगा? पंजाब के चुनाव एक ऐसा खतरनाक खेल हैं जिसका परिणाम बड़ा दुःखद हो सकता है। अभी समय है। शायद सुबोधकान्त की हत्या के प्रयत्न से सरकार कुछ सोचने को बाध्य हो! पर अभी क्या करें?

१६ जून १९६१



बांग्लादेश के उदय से जिनके हितों को चोट लगी थी, वे सब किसी तरह भारत से उसका बदला लेने के लिए मौके की तलाश में थे। जिन्होंने पाकिस्तान के निर्माण द्वारा भारत का विभाजन करके अपनी साम्राज्य-समाप्ति की किसी तरह भरपाई समझ कर सन्तोष कर लिया था, उनके मिथ्याभिमान को इस बात से चोट लगी थी कि भारत ने उनके बनाये पाकिस्तान को ही खण्डित कर दिया। स्वयं पाकिस्तान तो मर्माहत हुआ ही था, क्योंकि उसका अंगभंग हुआ था, ब्रिटेन और अमरीका भी कम मर्माहत नहीं हुए थे। इसलिए सब प्रच्छन्न रूप से खालिस्तान-समर्थन में जुट गए। भारत में भी खालिस्तान के समर्थक यह कहने लगे कि भारत के सहयोग से बांग्लादेश बन सकता है, तो पाकिस्तान, ब्रिटेन, कनाडा और अमरीका के सहयोग से खालिस्तान क्यों नहीं बन सकता?

खालिस्तान-समर्थकों ने यह कभी नहीं सोचा कि बांग्लादेश की आज़ादी की लड़ाई में हिन्दुस्तान ने निर्णायक भूमिका क्यों अदा की? दोनों स्थितियों में कोई समानता नहीं। पश्चिमी पाकिस्तान ने पूर्वी पाकिस्तान को अपना उपनिवेश बना रखा था। चुनावों में भारी बहुमत से विजयी होने पर शेख मुजीब को लोकतांत्रिक सिद्धान्त की दृष्टि से पाकिस्तान का प्रधानमंत्री बनना चाहिए था, पर उसे याह्या खाँ ने गिरफ्तार करके मारने की तैयारी कर ली थी, जेल में ही उसके मरने से पहले उसकी कब्र खोद ली गई थी। पाकिस्तान सेना ने लगभग एक करोड़ लोगों को शरणार्थी बना कर भारत में खदेड़ दिया था, जिसका सीधा असर भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा था। ऐसे समय भारत-सरकार को कार्रवाई के लिए विवश होना पड़ा था। खालिस्तान की मांग के पीछे सिखों के साथ भेदभाव की बनावटी बात के सिवाय और कोई आधार नहीं था।

—‘तूफान के दौर से पंजाब’, पृष्ठ १

सुभाषित

केयूर न विभूषयन्ति पुरुषं, हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं, नालंकृता मूर्धजाः॥
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं, या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम्॥

— भर्तृहरि, नीतिशतक, १६

हैं केयूर न नर की शोभा, औ, न चन्द्र—सम उज्ज्वल हार।
नहीं स्नान चन्दन का लेपन, अथवा केशों का शृंगार॥
वाणी ही नर का भूषण है, संस्कारित जो धारित दिव्य।
और सभी भूषण क्षय होंगे, वाणी ही है भूषण भव्य॥

—स्व० गोपालदास गुप्त

वाणी का संयम

महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने वाणी के चार रूप बताये हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। 'परा' वह अन्तःकरणस्थ वाणी है जिसमें परमात्मा ऋषियों की आत्मा में वेदों का ज्ञान प्रकाशित करता है। इसमें मुखादि अवयवों की आवश्यकता नहीं होती। 'पश्यन्ती' वाणी वह है जो विवक्षा होने पर वक्ष में वायु के रूप में स्थित होती है। 'मध्यमा' वाणी कण्ठगत वायु के रूप में स्थित होती है। और 'वैखरी' वाणी मुख के विभिन्न अवयवों से टकराकर बाहर निकल कर शब्दों के रूप में सुनाई देती है। यह वैखरी इसलिए कहलाती है कि यह बाहर आकर बिखर जाती है — तरकस से निकले तीर की भांति वापिस लौटकर नहीं आती। यही वाणी मनुष्य का असली भूषण है — मनुष्य का भूषण इसलिए कि परमात्मा ने वैखरी वाणी का वरदान समस्त प्राणी—जगत् में केवल मनुष्य को ही प्रदान किया है, अन्य किसी प्राणधारी को नहीं।

वेदादि समस्त शास्त्रों की रचना, अध्यापन आदि इसी वैखरी वाणी का प्रताप है। समस्त वाङ्मय और साहित्य इसी की देन हैं। इस वैखरी वाणी के विस्तार का क्या कहना!

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं

स्वल्पं तथायुर्बहवश्च विघ्नाः॥

शब्द—शास्त्र के विस्तार का कोई पार नहीं है—अनन्त है वह। इतना अन्तहीन

कि समस्त आयु भी उसके लिए छोटी पड़ जाती है। एक ही जन्म की आयु नहीं, जन्मजन्मान्तर की आयु भी। ज्ञान क्योंकि अनन्त है, इसलिए उसे शब्दों द्वारा प्रकट करने वाला विस्तार भी अनन्त है और दिन—प्रतिदिन और बढ़ता ही जाता है। पर किया भी क्या जाए? इस शब्द—ब्रह्म को जाने बिना परमब्रह्म को भी नहीं जाना जा सकता—

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

पर यह शब्द—ब्रह्म मनुष्यजाति के लिए यदि वरदान है, तो सबसे बड़ा अभिशाप भी यही है। यह वरदान और अभिशाप दोनों केवल मनुष्ययोनि के लिए ही सुरक्षित हैं, प्राणियों की अन्य योनियों के लिए नहीं। हो भी क्यों न? जीवात्मा को कर्म करने की स्वतंत्रता देकर परमात्मा ने मनुष्य को खुला छोड़ दिया है कि वह चाहे तो इस शब्द को ब्रह्म मानकर इस मनुष्य—जाति के लिए वरदान बना ले, चाहे तो इसे दानव बनाकर मनुष्यजाति के लिए अभिशाप बना दे। और सचमुच मनुष्य ने अपने इस विशेषाधिकार का प्रयोग दोनों तरह से किया है—वरदान की तरह भी और अभिशाप की तरह भी। यह मनुष्य—योनि की कैसी विडम्बना है? इसीलिए वेद ने कहा है—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताऽधिवाचि।।

(ऋग्वे० १०/७/२)

जैसे सक्तू को पानी में घोलने से पहले छलनी से छान लेते हैं कि जिससे कोई ऐसी वस्तु न चली जाये जो पेट में विकार करे, उसी प्रकार बुद्धिमान् व्यक्ति वाणी को अपने विवेक से छान कर बोलता है। तभी मित्र भी मित्रता बनाये रखते हैं, और ऐसे पुरुषों की वाणी में लक्ष्मी, शोभा और सम्पत्ति निवास करती हैं। परन्तु जो बिना विचारे और परिणाम का ध्यान किये बिना वाणी का प्रयोग करते हैं, वे पारस्परिक कलह और शत्रुता बढ़ाने के सिवाय और कुछ नहीं करते। जिस वाणी से दुश्मन को भी मित्र बनाया जा सकता है, उसी वाणी से मित्र को भी दुश्मन बनाया जा सकता है। इसलिए नीतिकारों ने कहा है—

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।

परापवाद-शस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय।।

यदि किसी एक ही काम से संसार को अपने वश में करना चाहते हो, तो दूसरों की निन्दा—रूपी फसल चरने से अपनी वाणीरूपी गाय को रोको। यदि ऐसा हो पाता तो 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' का आदर्श संसार में चारितार्थ न हो जाता! पर तब यह संसार द्वन्द्वात्मक कहां रहता!

वाणी जितना भयंकर हथियार है, उतना भयंकर हथियार और कोई है नहीं। अन्य हथियारों से किये गये घाव समय पाकर भर जाते हैं, पर वाणी का घाव तीन काल में भी नहीं भरता। नीतिकारों ने कहा है न—

रोहति सायकैर्विद्धं छिन्नं रोहति चासिना।

वचो दुरुक्तं बीभत्सं न प्ररोहति वाक्क्षतम्।

तीरों का घाव भर जाता है, तलवार का घाव भी भर जाता है, किन्तु कठोर वाणी का भयंकर घाव कभी नहीं भरता।

और दूर क्यों जाएं? अपने केन्द्रीय मंत्री श्री माधवराव सिंधिया ने संसद के सबसे बड़े विपक्षी दल भारतीय जनता पार्टी को 'देशद्रोही' कहकर लोकतंत्र की समस्त मर्यादाओं को ताक पर रख दिया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि उसी भाजपा में उनकी बहन वसुन्धरा राजे और माता श्रीमती विजया राजे सिंधिया भी शामिल हैं। तो क्या वे अपनी सगी बहन को और जन्मदात्री मां को उसी शब्द से संबोधित करना चाहते हैं? यदि ऐसा है तो क्या उनके रक्त में भी अपनी माँ के देशद्रोह के कीटाणु प्रवेश नहीं कर चुके होंगे? फिर जब स्वयं माधवराव सिंधिया कभी जनसंघ में शामिल थे, जिसका प्रतिरूप अब भाजपा को माना जाता है, तब क्या वे भी देशद्रोही नहीं थे? यदि ब्रिटिश-कालीन सिंधिया वंश के इतिहास को देखकर कोई इतिहासकार सन् १८५७ में रियासत द्वारा अंग्रेजों की सहायता करने के प्रमाण उपस्थित कर उनके पूर्वजों को 'देशद्रोही' घोषित करे, तो सत्य के विपरीत न होकर भी क्या श्री माधवराव स्वयं को उस वंश का उत्तराधिकारी होने का गर्वपूर्वक उल्लेख कर सकेंगे?

श्री माधवराव इस सबसे अपरिचित हों, यह बात नहीं है। वे इतने नासमझ भी नहीं हैं कि अचानक उनके मुंह से यह बात निकल गई हो। अपनी ओर से, छलनी से पूरी तरह छानकर ही वाणी का उन्होंने प्रयोग किया है। तभी तो उन्होंने खम ठोक कर कहा है कि मेरे शब्दकोश में भाजपा के लिए 'देशद्रोह' के सिवाय और कोई शब्द नहीं है और मैं इस शब्द को वापिस लेने को तैयार नहीं हूँ। कारण? कारण यह कि राजीव गांधी के बाद वे भी प्रधानमंत्री पद के एक उम्मीदवार थे। क्यों न हो? राजीव गांधी से दोस्ती जो थी! जिस तरह चौकड़ी के अन्य लोग उसी दोस्ती के बल पर अपनी-अपनी गोटी भुनाने में लगे रहे, उसी तरह श्री सिंधिया भी। पर छींका टूटा नरसिंहराव के पक्ष में। इसे एक युवा राजकुमार कैसे बर्दाश्त करता कि एक युवा की गद्दी को एक बूढ़ा छीन ले जाए? चौकड़ी ने भी तो शुरू में सोनिया गांधी को कांग्रेस-अध्यक्ष और प्रधानमंत्री बनाने का फैसला कर ही लिया था। पर वह तो कहो कि सोनिया स्वयं इन करटक-दमनकों के झांसे में नहीं आई, अन्यथा उन्होंने तो अपनी ओर से कोई कसर छोड़ी नहीं थी। सो अब

भाजपा को निशाना बना कर और कांग्रेस के उस वर्ग को, जो नेहरू-वंश की विरासत का पिछलग्गू है और भाजपा को अच्छूत समझता है, भाजपा के बढ़ते प्रभाव का भूत दिखाकर श्री सिंधिया ने यह समझाना चाहा है कि इस 'देश की दुश्मन' भाजपा के बढ़ते प्रभाव से आतंकित होकर उनका पक्ष लें।

नरसिंहराव जैसे नखदन्तविहीन बूढ़े 'सिंह' के बस का यह खेल नहीं। फिर सिंधिया का यह भी विश्वास है कि राष्ट्रीय मोर्चा, वाममोर्चा और जनतादल तथा वे सब मुसलमान भी जो भाजपा के बढ़ते प्रभाव से आतंकित हैं, उनका पक्ष लेंगे और एक दिन उनकी मुहिम रंग लाएंगी।

सो यह केवल वाणी का असंयम नहीं है, बल्कि राजनीति का गहरा खेल है। पर भाजपा के उन युवाओं का उत्साह इतना अन्धा कैसे हो गया कि वे इस खेल को नहीं समझ सके और उनके निवास पर प्रदर्शन करने पहुंच गये? क्या ये अबोध को 'हीरो' बनने का मौका दे रहे हैं? आज की राजनीति और आज के राजनीतिज्ञ अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए किसी भी हद तक उतर सकते हैं और हरेक छोटी-मोटी घटना को भी राजनीतिक रंग देने से बाज नहीं आते। इस कुचक्र से बचने की अव्वल तो युवाओं को होनी चाहिए।

२५ अगस्त १९६१



एक बुनियादी भूल की ओर संकेत करना भी आवश्यक है। आदमी को केवल बुद्धि समझ लिया गया है। इसलिए दिन-रात उसकी बुद्धि के विकास के लिए ही प्रयत्न किए जाते हैं। पर आदमी केवल 'बुद्धि' ही नहीं है। यदि किसी आदमी की खोपड़ी बड़ी होती चली जाए और शेष सारा शरीर क्षीण होता चला जाए, तो उस आदमी का चलना-फिरना और जीना भी दूभर हो जाएगा।

बुद्धि को नींव में रख देने से जो भवन बनता है, वह मन्दिर नहीं होता, एक फैक्टरी बन जाता है। हमारे शिक्षक अपने छात्रों को फैक्टरी की मशीन बनाते जाते हैं—ऐसी मशीन जिसमें कम्प्यूटर की तरह गणना करने वाली बुद्धि तो फिट हो सकती है, पर आनन्द और सौन्दर्य की अनुभूति करने वाला 'हृदय' नहीं। जीवन केवल बुद्धि नहीं है, उसमें हृदय का भी उतना ही महत्त्व है।

—'फिर इस अंदाज से बहार आई', पृष्ठ १०३

सुभाषित

न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारी।
व्यये कृते वर्धते एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधन-प्रधानम्॥

विद्या रूपी धन सब धनों से बढ़कर है, क्योंकि न तो इसे चोर चुरा सकते हैं, न राजा छीन सकता है, न भाइयों में बांटा जा सकता है, न ही व्यक्ति के लिए बोझ बनता है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस विद्यारूपी धन को जितना खर्च करो, यह उतना-उतना ही बढ़ता जाता है, फिर यह धन सब धनों में सबसे बढ़कर क्यों नहीं होगा?

तेरी गठरी में लागा चोर

‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ में एक कार्टून छपा है—“श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह पुलिस को फोन कर रहे हैं कि मैंने चुनाव जीतने के लिए एक नायाब नुस्खा तैयार किया था, वह किसी ने चुरा लिया है, पता लगाइए।”

वैसे आजकल चोरी या अपहरण कोई नई बात नहीं रही। वह आजकल की सबसे बड़ी राजनीति है। कश्मीर के आतंकवादी तो जीते ही इस अपहरण की बंदौलत हैं। जब-जब सरकार हेकड़ी दिखाने लगती है, तब-तब वे किसी ऐसे व्यक्ति का अपहरण कर लेते हैं, जिसके कारण राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार परेशान हो जाती है और अन्त में विजय आतंकवादियों की ही होती है। तत्कालीन गृहमंत्री मुप्ती मुहम्मद सईद की बेटी रुबिया से लेकर दुरैस्वामी तक सबकी कहानी आप जानते हैं। अभी केन्द्रीय मंत्री गुलामनबी आज़ाद के साले का अपहरण कर लिया और जिस दिन केन्द्रीय गृहमंत्री श्री शंकरराव चव्हाण श्रीनगर में अपनी प्रेस कान्फ्रेंस कर रहे थे, ठीक उसी समय आतंकवादी एक बड़े पुलिस अफसर का अपहरण कर रहे थे। कश्मीरी आतंकवादियों की देखादेखी असम के उल्फा वाले और आन्ध्रप्रदेश के नक्सलवादी भी उसी रास्ते पर चल रहे हैं। इतना ही क्यों, अब तो स्वयं व्यापारी भी व्यापारियों का अपहरण करने लगे हैं। बम्बई के चार हीरा-व्यापारियों की दास्तान भी आपको मालूम ही है। अब तो स्वयं पुलिस भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए चाहे जब किसी का भी अपहरण कर लेती है। फ्रैंशन इसी को तो कहते हैं—जो एक साथ सब जगह चल निकले।

मजेदार बात यह है कि हमारी पुलिस अपने काम में इतनी 'कुशल' है कि आज तक किसी अपहृत व्यक्ति का और अपहरण—कर्त्ता का पता नहीं लगा सकी। कश्मीर में तो, कहते हैं, अधिकांश बड़े पुलिस अफसर भी आतंकवादियों से मिले हुए हैं। विश्वास न हो तो कश्मीर के दो बार राज्यपाल रहे श्री जगमोहन से उसका कच्चा घिन्ना पूछ लीजिए, जिसका कुछ संकेत उन्होंने अपनी सद्यः-प्रकाशित 'माई फ्रोजन टरबुलेन्स इन कश्मीर' नामक अंग्रेजी पुस्तक में किया है। इसलिए पूर्व—महामहिम वी. पी. सिंह जी! खातिर जमा रखिये, हमारी पुलिस भी आपकी इस बात में कोई सहायता नहीं कर सकती। अब तक उसने किसी अपहरण केस का पता नहीं लगाया, तो अब क्या पता लगाएगी?

हां, हमसे पूछिए तो हम बता सकते हैं कि आपके उस नायाब नुस्खे की चोरी किसने की है। दूर क्यों जाते हैं, अपने चारों ओर नज़र घुमाकर देखिए, ज़रा गहरी नज़र, आपको स्वयं पता लग जाएगा। पर शायद आप साफ—साफ कहने में कतराएं, क्योंकि आप स्वयं भी तो उसी थैली के चट्टे—बट्टे हैं न! हम आपको पक्की खबर देते हैं—आपके नुस्खे की चोरी उसने की है, जो पुश्तैनी शातिर चोर के रूप में कुख्यात है। उस चोर का नाम है—कांग्रेस। कांग्रेस अपनी इसी शतरंजी चाल की बदौलत इतने वर्षों तक देश का शासन हथियाए रही है। आप भी जानते हैं कि हुकूमत की कुर्सी बरकरार रखने के लिए आजकल चोरी तो क्या, कोई भी कर्म कुकर्म नहीं माना जाता।

हमने छोटे मुंह बड़ी बात कह दी। क्या करें, सत्य सत्य है। हम तो भैया देश के अच्छे नागरिक की तरह 'सत्यमेव जयते' के उपासक हैं। फिर आप यह भी जानते हैं कि पत्रकारों की एक तीसरी आंख भी होती है, जो अदृश्य चोर को भी चोरी करते हुए पकड़ लेती है।

हमने कांग्रेस को पुश्तैनी शातिर चोर कहा है। आप पूछेंगे—प्रमाण? प्रमाण एक नहीं, अनेक। आखिर पुश्तों तक का मामला है। देश की आज़ादी से लेकर अब तक का सारा इतिहास—नेहरू से लेकर नरसिंहराव तक। दोनों की ही नामराशि एक है—न से शुरू होती है न! (पर दूरदर्शन या आकाशवाणी पर रोज—ब—रोज जो 'नरसिंहराव' बोला जाता है, वह कौन है, यह हम नहीं जानते। हम यह भी नहीं जानते कि नरसिंह यदि 'नरसिंहा' हैं, तो वी०पी० सिंह 'वी०पी० सिन्हा' क्यों नहीं? क्या करें दूरदर्शन को हिन्दी जरा कम आती है, इसलिए अंग्रेजी की वर्तनी का ही अनुसरण करना पड़ता है बिचारे को। आखिर असली राजभाषा राजमहिषी—अंग्रेजी ही तो है।) . . . यही देखिए, जब समाजवादियों ने समाजवाद का नारा इतने जोर से लगाया कि कांग्रेस के बहरे कानों को भी सुनाई देने लगा, तो कांग्रेस ने भारत के संविधान में लोकतंत्र के साथ समाजवाद भी घुसेड़

दिया। अब भले ही समाजवादी कहते रहें कि हमारे नारे की चोरी हो गई, पर कांग्रेस तो साहूकार संस्था रही है न! इसलिए उसकी चोरी भी साहूकारी मानी गई और स्वयं अनेक दिग्गज समाजवादी भी कांग्रेस की भेड़ों में सहर्ष शामिल हो गये।

फिर जब कम्युनिस्टों ने रूस की नकल पर निजी सम्पत्ति समाप्त कर राष्ट्रीयकरण पर जोर दिया, तो कांग्रेस ने उस नारे का भी अपहरण कर लिया। पब्लिक सैक्टर के नाम से बड़े-बड़े सरकारी उद्योग अरबों रु० की लागत से खड़े कर दिये। नाम 'पब्लिक सैक्टर', पर व्यवहार में सरकारी उद्योग। कम्युनिज्म के लिहाज से असली 'पब्लिक' सरकार ही तो है, जनता थोड़ी है। कांग्रेस साम्यवादियों के सहयोग से पुनः चुनाव जीत गई। जब कांग्रेस को चुनाव में जीतने के लिए अपनी तिजोरियां खोल देने वाले पूंजीपति और उद्योगपति इस राष्ट्रीयकरण की नीति से विक्षुब्ध हो उठे, तो कांग्रेस ने राष्ट्रीयकरण के साथ निजी पूंजी को भी बराबर का हिस्सा देकर और देश की मिश्रित अर्थव्यवस्था घोषित कर उनको भी सन्तुष्ट कर दिया। इस चोरी से कांग्रेस भी खुश, पूंजीपति भी खुश।

फिर जब जनसंघ ने देश की एकता और अखण्डता का नारा देकर सारे देश को गरमा दिया, तो कांग्रेस ने उनका यह नारा भी चुरा लिया और सन् १९८४ का सारा चुनाव इसी नारे को अपना कर तथा आनन्दपुर प्रस्ताव को नकार कर भारी बहुमत से जीत लिया। शातिर चोर की और चाल देखो। पहले कभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और विदेशी पूंजी को देश में लाने का समर्थन करने वालों को देशद्रोही कहा जाता था, पर अब देशभक्ति की सबसे बड़ी ठेकेदार कांग्रेस ने स्वयं अपनी सरकारी नीति उसके पक्ष में घोषित कर दी। इतना ही नहीं, विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिए रुपये का अवमूल्यन किया, सोना बंधक रखा, तथा अन्य अनेक रियायतें दीं। आज यही सबसे बड़ी देशभक्ति है।

माई वी०पी० सिंह! आप अपने को राजनीति का बड़ा चतुर खिलाड़ी समझते थे। अब आपके उप-प्रधानमंत्री देवीलाल ने विशाल किसान रैली निकालकर अपने आपको 'एकमेवाद्वितीयम्' किसान नेता सिद्ध करके आपकी कुर्सी हिला दी, तो आपने नहले पर दहला मारने के लिए अपने सन्त विनोबाई सर्वोदयी कमण्डल में से मण्डल-आयोग का नुस्खा अपने साथियों को बिना बताये ऐसे अलादीन के चिराग की तरह निकाल दिया कि लोग इस चमत्कार को देखते रह गए। आप आश्चर्य थे कि इस मण्डल-आयोग की जादुई छड़ी से अब सारा चुनाव आपकी मुट्ठी में आ गया है। लगता है, आपने तंत्रमंत्राधिपति चन्द्रास्वामी से बिना पूछे, और किसी ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाए बिना मंडल-आयोग का नुस्खा तैयार किया था, इसलिए आपके ग्रह आपको ही भारी पड़ गए। सारे देश में बिहार को छोड़कर

और कहीं आपके दल को सफलता नहीं मिली। बिहार में भी सफलता का श्रेय आपको नहीं, लालू यादव की 'यादवी' सेना को है।

चोरी में बुराई क्या है? हमारे संस्कृत के पंडितों ने सब विद्याओं को शास्त्र का रूप दिया है। कामशास्त्र की तरह चौर्य-शास्त्र भी है। उसमें संध लगाने से लेकर चोरी के नाना प्रकारों का वर्णन किया गया है। संस्कृत में 'चोर' नाम के एक कवि भी हुए हैं। एक इतिहासकार ने तो यह भी सिद्ध किया था कि तमिलनाडु के दो प्रसिद्ध राजवंशों—चोल और पांड्य—में चोल असल में 'चोर' ही था। 'रलयोरभेदः'—र और ल में भेद नहीं माना जाता। जैसे रेखा और लेखा। ऐसे ही चोर और चोल। आखिर इतिहास में मौर्य-साम्राज्य मशहूर है ही, तो एक चौर्य-साम्राज्य भी रहा हो तो क्या आश्चर्य?

पर भोले वी०पी० जी, हम आपको एक और गहरी बात बताते हैं। हमारे नरसिंह राव जी बड़े पक्के चोर हैं। (प्रधानमंत्री जी क्षमा करें!) आपका मण्डल-आयोग का नुस्खा चुराया, सो चुराया, आपका नाम भी चुरा लिया। आप वी०पी० हैं, वे भी वी०पी० हैं। आपका पूरा नाम वी०पी० में समाहित है, पर माननीय नरसिंह राव जी ने अपने नाम के पूर्व विशेषण के रूप में वी०पी० लगाया है, बस क्रम उलट दिया है, पक्के खिलाड़ी की तरह, जिससे चोरी आसानी से पकड़ी न जा सके। बताइए, अब आप क्या करेंगे!

यह खेल नरसिंह राव जी का भी पुश्तैनी मामला है। आखिर नृसिंहावतार भगवान विष्णु का ही तो अवतार था। श्रीकृष्ण भी विष्णु के ही अवतार थे। श्रीकृष्ण बचपन में माखनचोर थे, तो यौवन में गोपियों के वस्त्रों का अपहरण करने लगे—'गोप-वधूटी-दूल चौराय' (न्याय-कुसुमांजलि), और जब इस कला में अभ्यस्त हो गए तो गोपियों के दिल चुराने लगे। बिचारी राधा! वृषभान जैसे भले आदमी की भोली-भाली कन्या, यह अहीर की 'गोरटी छोरटी' उस सांवले सलोने के जाल में फंस गई और उस 'चोरजार-शिखामणि' ने इस बिचारी का हृदय ऐसा चुराया, ऐसा चुराया कि राधा कन्हैया बिना, राधा के सिर्फ र अक्षर के साथ 'आधा कन्हैया' रह गई।

इस अभिनव नृसिंहावतार का लक्ष्य कौन सा हिरण्यकश्यप है, यह तो हम नहीं जानते, पर वी०पी० तथा रामो-वामो के बन्धुओ! तेरी गठरी में लागा चोर, मुसाफिर जाग जरा।'

सुभाषित

गुणवद्गुणवद् वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविषते -
भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः।।

भला या बुरा कोई भी काम करने से पहले समझदार व्यक्ति को उसका परिणाम भलीभांति सोच लेना चाहिए, क्योंकि शीघ्रता में किये गये कामों का परिणाम बाद में जीवन-पर्यन्त हृदय में कांटे की तरह चुभता रहता है।

- भर्तृहरि (नीतिशतक)

चुनावों का बायकाट, मगर बाद में

१६ फरवरी को पंजाब में चुनाव करवाने की दृढ़ इच्छाशक्ति का जिस तरह केन्द्रीय सरकार ने बार-बार इज़हार किया है, और उसके लिए अभी से पर्याप्त सैन्यबल और पुलिस-बल का प्रबन्ध किया है, उससे लगता है कि इस बार पंजाब में चुनाव करवाने पर सरकार पूरी तरह आमादा है। स्वतन्त्र और निर्दलीय उम्मीदवार की मृत्यु पर चुनाव स्थगित न करने का निर्णय भी उसी संकल्प का सूचक है, पर अकाली दलों ने अभी से चुनावों का बायकाट करने का अपना निर्णय घोषित कर दिया है, जिससे राजनीति के पण्डितों के मन में अभी से यह शंका पैदा हो गई है कि अकाली दलों के बहिष्कार के बावजूद यदि चुनाव हो भी गए, तो उनकी वैधता क्या होगी? और क्या अकाली उसे स्वीकार करने को तैयार होंगे? यह शंका निर्मूल नहीं है। क्योंकि जिस तरह अकाली पंजाब पर हावी हैं उसके कारण वे अपनी मन-मर्जी के बिना किसी भी समस्या का समाधान नहीं होने देंगे। इसके लिए कुछ पहलू विचारणीय हैं।

एक तो सभी सिख अकाली नहीं हैं, अन्य राजनीतिक दलों में भी सिख शामिल हैं, और उनके अपने अलग संगठन भी हैं। इसलिए केवल अकालियों को ही सब सिखों का प्रतिनिधि मान कर एकमात्र मुख्य राजनीतिक दल मान लेना वैसी ही भयंकर भूल होगी, जैसी अंग्रेजों ने केवल मुस्लिम लीग को एकमात्र प्रमुख राजनीतिक दल मान कर और अनावश्यक महत्त्व देकर देश का विभाजन जैसा भयंकर पाप किया था। सब मुसलमान कभी मुस्लिम लीग के साथ नहीं थे। पर न तो अंग्रेजों ने उनको महत्त्व दिया और न ही कांग्रेस ने। और तो और, जिन्ना हमेशा

कांग्रेस को हिन्दू-संस्था कहते रहे और कांग्रेस उसका बारम्बार खण्डन करती हुई भी बराबर मुस्लिम लीग से ही बात करती रही। बिचारे राष्ट्रवादी मुसलमान दो चक्कियों के पाट में फँस गये। इसलिए सबसे बड़ी गलती तो यही हुई कि मुस्लिम लीग और अकाली पार्टी जैसी साम्प्रदायिक पार्टियों को राजनीतिक दल की मान्यता देकर चुनाव लड़ने की अनुमति दी गई। इन दोनों पार्टियों के नाम में ही साम्प्रदायिकता की झलक है — कोई गैर-मुस्लिम मुस्लिम लीग का सदस्य नहीं बन सकता, और कोई गैर-अकाली अकाली दल का सदस्य नहीं बन सकता। यदि अब भी भविष्य के लिए यह सबक सीख लिया जाए कि किसी भी एक सम्प्रदाय या जाति के नाम पर बनी राजनीतिक पार्टी को चुनाव लड़ने की अनुमति न दी जाए, तो देश का बहुत भला हो। पर लगता है कि अब गाड़ी इतनी आगे बढ़ चुकी है कि उसे पीछे लौटाने की हिम्मत सरकार में नहीं है। इसलिए वह गलती बराबर दुहराई जाती रहेगी।

अब रही अकाली दलों की बात। उनके भी कितने गुट हैं। सब एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा में इतने स्वार्थान्ध हैं कि उन्हें सिवाय सत्ता के, पन्थिक कमेटी हथियाने के, और किसी न किसी तरह स्वर्ण-मन्दिर पर अपना नियन्त्रण कायम रखने के, अलावा और कुछ सूझता ही नहीं। पिछले दिनों तोहड़ा पर जानलेवा हमला हुआ था। पर फिर उन्हें शिरोमणि अकाली दल का अध्यक्ष बना दिया गया। हफ्ता-दस दिन पहले ही सिमरनजीत सिंह मान बादल को सरकार का गुर्गा बता रहे थे और उन पर तरह-तरह के घोटालों के लांछन लगा रहे थे। तोहड़ा और बादल यही दो गुट ऐसे हैं जिनकी अकालियों में कुछ मान्यता है। पर अब वे भी बायकाट के मामले में मान के साथ हो गये हैं।

अब रहे श्री सिमरनजीत सिंह मान। इन श्रीमान् मानजी का तो एक ही मुद्दा है — मेरी सब मानें, पर मैं किसी की न मानूँ। उनकी हालत तो 'ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति' वाली है। उन्हें तो साक्षात् ब्रह्मा भी नहीं मना सकते। कोई कैसे मनाये — वे किसी बात पर टिकें तो सही! चन्द्रशेखर के समय होने वाले चुनावों में उनको मुख्यमन्त्री बनने की उम्मीद थी। पर जब वे चुनाव स्थगित हो गये, तो उन्होंने ही नारा लगाया था कि चुनाव हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अब जब चुनाव हो ही रहे हैं, तो वह नारा कहां गया? — क्योंकि अब उन्हें मुख्यमन्त्री बनने के आसार कहीं से नज़र नहीं आते। कभी वे शहाबुद्दीन से जाकर मिलते हैं, और बाबरी मस्जिद ऐक्शन कमेटी के साथ मिलकर अयोध्या में मस्जिद को बचाने के नाम पर अभियान और प्रयाण प्रारम्भ करते हैं, परन्तु उसमें उन्हें सफलता नहीं मिलती। कभी वे खालिस्तान के प्रश्न को संयुक्तराष्ट्र संघ में ले जाने की बात करते हैं। हाल में ही चुनावों को सफलता-पूर्वक होने देने के लिए जब वहां सीमा पर सेना तैनात

की गई, तो उन्होंने कहा कि भारत पाकिस्तान पर हमला करना चाहता है। बायकाट करने से पहले उन्हीं ने यह भी कहा था कि इस बार का चुनाव खालिस्तान के लिए रायशुमारी सिद्ध होगा। जब वैसा माहौल नहीं दिखा, तो बायकाट का फैसला कर लिया।

श्री मान साहब की विशेषता समझने के लिए एक ही उदाहरण काफी होगा। पिछले चुनावों में वे संसद-सदस्य चुन लिये गये, पर वे आज तक संसद में प्रवेश नहीं पा सके, क्योंकि वे एक गज लम्बी तलवार साथ लिये उसमें घुसना चाहते थे, पुलिस ने घुसने नहीं दिया। हाल में ही एकता परिषद की बैठक में शामिल होने गये, तो वहाँ भी पुलिस ने उन्हें नहीं घुसने दिया। अचानक उन्हें देवीलाल दिख गये, तो उनसे चिरोरी करने लगे कि मैं भी जाट हूँ, तुम भी जाट हो, मुझे अन्दर लिवा चलो। देवीलाल ने भी पूरा जाटू जवाब दिया — जाट है तो हल लेकर आ, तलवार लेकर क्यों आया है? आखिर हल तलवार से तो लम्बा ही होगा — पर जाट किसान, जो हलधर है, उसका प्रतीक हल नहीं तो और क्या होगा? आखिर गुरु गोविन्दसिंह ने खालसा सजाने के लिए पंच-ककारों में जो कृपाण को स्थान दिया था, उसका अर्थ केवल एक गज लम्बी तलवार ही होता है, यह कौन से शब्दकोश में लिखा है?

अब बादल यह कहते हैं कि लोंगोवाल समझौते के अनुसार चंडीगढ़ पंजाब को दिया गया था, इसलिए पहले चंडीगढ़ पंजाब को दो और उसके साथ ही सिखों की अन्य मांगों पर एकमुश्त सकारात्मक घोषणा करो, तब चुनावों में हिस्सा लेने की बात सोच सकते हैं। पर तुमने लोंगोवाल समझौता स्वीकार ही कब किया था? बादल और तोहड़ा को यही तो ईर्ष्या थी कि हमारे रहते लोंगोवाल को इतना महत्त्व क्यों? अन्यथा लोंगोवाल को गुरुद्वारे में मत्था झुकाते शहीद क्यों होना पड़ता?

अगली बात यह है कि इन तथाकथित अकाली नेताओं का चरित्र इतने विरोधाभासों से भरा है कि उनमें से किसी की कोई विश्वसनीयता नहीं है। वे 'क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टः' वाली प्रवृत्ति के हैं, बस किसी न किसी तरह निजी स्वार्थ पूरा होगा चाहिए। अन्तिम बात यह है कि बाहर से वे जितना दिखावा करते हैं अपने गर्वपूर्ण दम्भ का, अन्दर से उतने ही कायर हैं। इन नेताओं में से किसी को भी खाड़कुओं का विरोध करने का साहस नहीं है, सब को अपनी जान का डर है। और खाड़कू वे पाकिस्तान की शह पर जिन्दा हैं। पाकिस्तान नहीं चाहता कि पंजाब किसी तरह लोकतन्त्र की लीक पर चले। अब तो इन खाड़कुओं के स्वार्थ भी आतंकवाद से जुड़े गये हैं। जिन सरकारी अफसरों और नौकरशाहों की इस आतंकवाद के कारण चांदी कटती नजर आती है, वे भी चुनावों का विरोध करेंगे।

फिर भी कुछ सिख नेता हैं जो चुनाव में हिस्सा लेने को तैयार हैं। आखिर

आतंकवाद को समाप्त करना है तो उसका रास्ता केवल लोकतन्त्र ही है। उमरांगल, अमरेन्द्रसिंह और बरनाला के गुट चुनाव लड़ने के पक्ष में हैं क्योंकि वे उक्त सच्चाई को समझते हैं। इसके अलावा अब पंजाब के आम लोग बन्दूक की दहशत में जीते-जीते उकता चुके हैं, इसलिए वे सब भी चुनाव चाहते हैं। इसमें हिन्दू और सिख दोनों शामिल हैं। आतंकवादियों की गोलियों से जितने हिन्दू मारे गये हैं, उससे कम सिख नहीं मारे गये हैं। उनकी बहू-बेटियों से जितने बलात्कार हुए हैं, उतने और किसी वर्ग की बहू-बेटियों से नहीं।

यह सब होने पर भी खतरा तो हमेशा मौजूद है ही कि खाड़कू अब भी चुनाव को व्यर्थ करने के लिये कुछ भी कर सकते हैं। बड़ी से बड़ी वारदात भी उनके लिए खेल-मात्र है। पिछली बार उन्होंने घर-घर जाकर धमकी दी थी कि जिसकी अंगुलि पर वोट देने की स्याही का निशान पाया जाएगा, उसकी अंगुली काट दी जायेगी। इस बार इससे ज्यादा धमकी भी दे सकते हैं। सेना और पुलिस बल के रहते भी यह सब सम्भव है। इसका उपाय केवल एक ही है कि कितनी ही धमकियों के बावजूद सब राजनीतिक दल और आम जनता पूरी जान-जोखिम के साथ चुनाव-अभियान में जुट जाँ, अपनी हिम्मत का खुलकर प्रदर्शन करें और डराने-धमकाने के बावजूद अपने लोकतन्त्रीय अधिकार का प्रयोग कर इतनी अधिक संख्या में मतदान करें कि खाड़कुओं को भी उसे बनावटी और एकपक्षीय चुनाव कहने की हिम्मत न हो। लोकतन्त्र तो लोक के बल पर ही चलता है। जब इतना बड़ा लोकबल मिल कर आतंकवाद के विरुद्ध डटकर खड़ा होगा, तब सम्भवतः सत्तालोभी अकाली भी चुनावों में हिस्सा लेने में ही कल्याण समझें, अन्यथा उन्हें पीछे पछताने के सिवाय और कुछ हाथ नहीं लगेगा। तभी खाड़कुओं और पाकिस्तान के मंसूबे नाकामयाब होंगे। लोक मिलकर, एकजुट होकर खड़ा होगा, तभी पंजाब में आलोक की किरण फूटेगी। बिना लोक के आलोक नहीं, केवल एके-४७ बन्दूकों का धुआं ही पंजाब की नियति बन जाएगा।

२ फरवरी १९६२



“हिन्दी के वरिष्ठ पत्रकार श्री क्षितीश ने सिख इतिहास का मन्थन करके ऐसे तथ्य खोज निकाले हैं जिनसे सामान्य पाठक चौंक सकता है, पर तथ्य तो तथ्य हैं, वे बिना किसी व्याख्या के स्वयं बोलते हैं। किस प्रकार अध्यात्मवाद से खिसकते-खिसकते पंथ भौतिकवाद और सत्तावाद की ओर झुकता गया और अन्त में राष्ट्रद्रोह तक उतर आया— इतिहास की इस भयंकर त्रासदी का ऐसा विशद विवेचन किसी अन्य पुस्तक में दिखाई नहीं दिया।”

-प्रभाष जोशी

‘तूफान के दौर से पंजाब’ की भूमिका में

